* श्रीहरि *

# परलोक की बातें

[ द्वितीय सन्देश ]

20

स्वामी शुकदेवानन्द

❀ श्री हरिः ❀

# परलोक की बातें

[ द्वितीय संदेश ]

{ पूज्यपाद श्री स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज के सारगर्भित प्रवचनों से संकलित }

प्रकाशक—

मुमुक्षु-आश्रम,
शाहजहांपुर

प्रथमावृत्ति
२०००

मूल्य
।।) आठ आना

# विषय-सूची

॥ श्री हरिः ॥



# * भजन करते हुए *

## लाभ क्यों नहीं ?

अधिकतर व्यक्तियों को प्रायः ऐसी शंका होती है कि हमें भजन करते हुए कई वर्ष बीत गए किन्तु अभी तक लाभ तो कुछ भी नहीं हुआ ? कई मालाएं घिस गईं किन्तु हम ज्यों के त्यों ही रहे। इस शंका के समाधान में यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि जिन व्यक्तियों को अधिक समय व्यतीत हो जाने पर कुछ लाभ नहीं हुआ अथवा किसी प्रकार के आनन्द की अनुभूति नहीं हुई तो वास्तव में उन्होंने जो भजन किया है वह भजन नहीं है। भजन की प्रशंसा में जो कुछ भी कहा जाय वह कम ही है। हमारे संत और शास्त्रों ने भजन की प्रशंसा मुक्तकंठ से की है। भजन से जिन्हें लाभ पहुंचा है उनके इतिहासों की भी कमी नहीं है।

जिन्हें कुछ लाभ नहीं होता उन्हें भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि भजन करने वाला हाथ नहीं होता अथवा

माला फेरने मात्र से ही भजन नहीं कहा जासकता। वास्तव में भजन करने वाला तो मन होता है। उंगलियाँ और माला तो साधन मात्र हैं। उंगलियों से माला तो घूम रही है जिह्वा भी मुंह में चल रही है किन्तु मनीराम विषयों का चिन्तन कर रहे हैं तो इसे भगवान् के भजन की संज्ञा देना मूर्खता है यह भजन तो विषयों का हुआ भगवान् का नहीं। काठ की माला, उंगलियां और जिह्वा यह सभी वस्तुएं भजन करने वाली नहीं वरन् भजन करने में सहायक होती हैं भजन करने वाली जो आन्तरिक शक्ति है वह यदि भजन में तद्रूप है तो वही भजन वस्तुतः भजन कहा जायगा।

*माला तेरी काठ की धागा दियो पिरोय।*<br>
*मन में घुन्डी पाप की भजन किए का होय॥*<br>
*माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माँहिं।*<br>
*मनुआँ तो चहुँ दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं॥*

कल्पना कीजिए कि किसी पवित्र स्थान पर अथवा गंगा जी के तट पर जहाँ बहुत से भक्त भजन पाठादि कर रहे हों और कोई चोर भी वहाँ भक्तों का वेष बनाकर गौमुखी में हाथ डालकर तथा आसन लगाकर बैठ जाय और आंखें बन्द करके माला फेरने लगे और बीच बीच में आँखें खोलकर इधर उधर देखता भी जाय कि कौन

स्नान कर रहा, किसने कपड़े कहां रक्खे और वह अमुक व्यक्ति यदि अंदर घुसकर तैरने लगे तो उसके कपड़े लेकर चम्पत हो जाऊं, इत्यादि। अब आप विचार कीजिए कि यह भजन है या चोरी का चिन्तन? ठीक यही दशा उन प्रेमियों की है जिन्हें अधिक समय से भजन करते हुए भी कुछ लाभ नहीं हुआ। मालाएं तो उन्होंने बहुत फेर डालीं किन्तु कभी मन को फेरने का प्रयत्न नहीं किया, यदि मन को फेरने का प्रयत्न किया होता तो आज यह प्रश्न ही नहीं उठता। कोई व्यक्ति यदि कहे कि बहुत देर से साइकिल में मैं हवा भर रहा हूँ किन्तु इसमें हवा भरती ही नहीं तो आप उस व्यक्ति को यही उत्तर देंगे कि भले आदमी हवा यदि नहीं भर रही है तो पहिले पंचर जोड़ लो, अवश्य ही ट्यूब में पंचर होगा, जब तक पंचर नहीं जोड़ोगे तब तक उसमें हवा कैसे रुकेगी।

माला तो चल रही है, उसी समय किसी ओर शब्द होता है, कान आहट लेते हैं, आंखें उस ओर उठ जाती हैं और मनीराम भागकर परस्त्री को आंखों के द्वारा देखकर कुवासना करते हैं। यह भजन तो वस्तुतः स्त्री का ही हुआ माला चल रही है, मन नासिका के द्वारा गरम कचौड़ी और हलुवे की सौंधी सुगंध का अनुभव कर रहा है कि कब यह माला समाप्त हो और कब मैं गरम कचौड़ी और हलुवे का का भोग लगाऊं। इसे आप कौनसा भजन कहेंगे?

माला चल रही है और मन में विचार उठ रहे हैं कि मुझे इस प्रकार भजन करते देखकर लोग मेरी प्रशंसा करेंगे, मान करेंगे मेरा विश्वास करेंगे तब मैं अपनी दुकान पर मनमाने दाम लेकर खूब रुपया कमाऊंगा। यह कैसा भजन है ?

भगवान् का एक नाम अन्तर्यामी है अतएव वे तो तुम्हारे अन्तर को ही देखेंगे। ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां तो वाह्य जगत में कार्य संचालन के लिए साधन माना है प्रभु का निवास तो अन्तर्जगत में है। अतएव मन के अनुसार ही फल की प्राप्ति होगी। मुंह से नमक की डली निकालकर गुलाबजामुन के वास्तविक स्वाद का अनुभव होसकेगा।

हाथ माला फेरेंगे तो हाथ ही पवित्र होंगे वाणी और मन पवित्र नहीं होंगे। जिह्वा भी हाथ का साथ देगी तो वह भी पवित्र होगी। हाथ और जिह्वा के साथ में यदि मन भी भजन में तद्रूप होगा तो मन भी पवित्र हो जायगा और सच्चे आनन्द का अनुभव होने लगेगा। बाजार में यदि कोई मूर्ख व्यक्ति एक दुअन्नी लेकर जाये और उस दुअन्नी से चाहे कि एक रुपया वाला नोट मिल जाय तो क्या उसे नोट मिल सकता है ? दुअन्नी से तो उसे आठ पैसे ही मिलेंगे। यदि उसके पास दस रुपए का नोट होगा तो उसे रुपए के नोट चौअन्नी और दुअन्नी भी मिल

जायंगी। इसी प्रकार कर्मेन्द्रियों के पवित्र होने से ज्ञानेन्द्रियां पवित्र नहीं होती किन्तु ज्ञानेन्द्रियां पवित्र होने से कर्मेन्द्रियां स्वतः पवित्र हो जाती हैं और मन के पवित्र हो जाने से ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियां दोनों पवित्र हो जाएंगी कारण कि यह दोनों मन की साधन मात्र ही हैं।

भजन करने से यदि लाभ नहीं होता है तो यह निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि हमारा मन भजन नहीं करता है।

*भजन कह्यो ताते भज्यो, भज्यो न एकौ बार।*
*दूरि भजन जाते कह्यो, सो तैं भज्यो गंवार॥*

माला यदि हाथ में न भी हो और यदि मन से भगवन्नाम स्मरण चिन्तन हो रहा हो तो जीभ और हाथ दोनों पवित्र हो जायंगे।

उपरोक्त कथन से यदि कोई यह समझ ले कि जब मन से भजन नहीं होता तो फिर यह जाप पूजा पाठ सब बेकार ही है? क्या फ़ायदा है ऐसा करने से? इस प्रकार का विचार करना भूल है। यदि अभी मन भजन में नहीं लग रहा है तो अभ्यास करते करते आगे चलकर स्वयं ही लगने लगेगा। जबकि मन अपवित्र और मादक वस्तुओं में सुख का अनुभव करने लगता है। ताश, गंजीफा और

शतरंज आदि खेलों में भूख और प्यास तक को तिलांजलि दे सकता है तब क्या शाश्वत आनन्द के प्रतीक भजन में नहीं लगेगा? अवश्य लगेगा, ज्यों ज्यों अभ्यास बढ़ता जायगा त्यों त्यों स्वयं ही आनन्द का अनुभव होने लगेगा तब एक दिन ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जायगी कि भजन छोड़ते समय मन को बहुत कष्ट होगा। अतएव मनुष्य को जीवनपर्यन्त भजन का त्याग नहीं करना चाहिए।

भजन की महिमा से शास्त्र भरे पड़े हैं। भजन के द्वारा ही भगवान् का साक्षात्कार हो जाता है। मन की सच्ची पुकार को भजन कहते हैं। भजन की शक्ति से सब देवता यहाँ तक कि ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर भी साधक के पास खिंच कर चले आसकते हैं —

*मंत्र परम लघु जासु वश विधि हरि हर सुर सर्व।*
*महामत्त गजराज कहं वश कर अंकुश खर्व॥*

शतरंज के खिलाड़ी जानते हैं कि सब मुहरे लकड़ी के ही बने होते हैं उनकी लकड़ी के खिलौनों अर्थात् मुहरों के खेल में जब मन तद्रूप हो जाता है तो मनुष्य भोजन की भी परवाह नहीं करता। वह इतना तन्मय होजाता है कि अपने पास आकर बैठे हुए व्यक्ति के आने और जाने के समय का भी उसे भान नहीं रहता। इस प्रकार वृत्तियों

के तदाकार होने में ही आनन्द है, उन लकड़ी के मुहरों में आनन्द नहीं है। वास्तविकता यही है कि मन जिस वस्तु में जिस विषय में तदाकार होजाता है उसी वस्तु और विषय में भ्रम से उसे आनन्द की अनुभूति होने लगती है।

मन से यदि भजन होने लगे तो उस आनन्द का कहना ही क्या ? उस आनन्द की अनुभूति तो भुक्तभोगी संत ही जान सकते हैं। उसी आनन्द की प्राप्ति के लिए वे राज्य, सुख वैभव तथा समस्त साँसारिक विषयों को वमन की भांति परित्याग कर देते है। मन को जब तक भजन में आनन्द नहीं आता तभी तक वह बहकता है किन्तु जब आनन्द की उपलब्धि होने लगती है तब किसी समय आवश्यक कार्यवश भजन छोड़ने पर बहुत खेद होता है, ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई बहुत भारी हानि होगई है। जैसे किसी गाय का बछड़ा जिसकी अवस्था दो तीन दिन की हो तो वह दूध की तलाश में कभी मुँह के पास कभी पेट में और कभी कहीं अपने मुँह को लगाता है किन्तु दूध की प्राप्ति उसे उसी समय होती है जब दूध दुहने वाला उसे पकड़कर उसका मुंह गऊ के थन में लगा देता है। थन मुँह में लग जाने पर बछड़ा अपने आप नहीं हटता, फिर तो उसे बलपूर्वक ही हटाया जासकता है। इसी प्रकार मन रूपी बछड़ा जब सद्गुरु रूपी ग्वाले के द्वारा भजन रूपी थन में लग जाय तो दुग्ध रूपी आनन्द की प्राप्ति होकर

ही रहती है। बछड़ा जैसे दूध को अपनी इच्छा से नहीं छोड़ना चाहता ऐसे ही भजन में लगा हुआ मन भजन को नहीं छोड़ता। मन को ऐसा बनाने के लिए पहिले भजन की विधि सीखने की मुख्य आवश्यकता है। घर पर जब भोजन बनाया जाता है तो उसमें भी एक निश्चित विधान के अनुसार क्रिया करनी पड़ती है, सभी आवश्यक वस्तुएँ पड़ती हैं तब किसी प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ बनपाते हैं। यदि तनिक सी भी असावधानी होजाय अर्थात् नमक ही अधिक होजाय तो किया हुआ सारा परिश्रम व्यर्थ होजाता है और अधिक मूल्य से तैयार किया हुआ वह भोजन व्यर्थ होजाता है। जबकि भोजन बनाने में सांगोपांग विधान और सावधानी की आवश्यकता है तब क्या भजन विधि सीखने की आवश्यकता नहीं है? अनेक साधक मन्मुखी होकर ही साधन प्रारम्भ कर देते हैं, कुछ दिनों तक करते रहने के पश्चात्, विधान से अनभिज्ञ होने के कारण जब उन्हें किसी प्रकार की सफलता के दर्शन नहीं होते तो वे हताश होकर अपना साधन समाप्त कर देते हैं और कभी इस संबंध में मित्रों से चर्चा चलने पर कहते हैं। कि भजन पूजन में कुछ दम नहीं मैंने तो बहुत दिनों तक अमुक अमुक साधन किये लेकिन भाई मुझे तो लाभ हुआ नहीं सब बेकार है। भगवान् ने भजन सब के लिये नहीं बनाया है वे तो किसी किसी जीव को भजते ही इसी निमित्त हैं जिसे भजन साधन करने

पर सिध्दि मिल जाती है। सब के लिए ऐसा सम्भव नहीं है, इत्यादि। इस प्रकार की बातें करके ऐसे भ्रम में पड़े हुए सज्जन दूसरों को भी भ्रम में डालकर हताश बनाने में हेतु बन जाते हैं। अतएव इस बात की सर्व प्रथम आवश्यकता है कि हम भजन का विधान अपना साधन प्रारम्भ करने से पहिले भली प्रकार सीख लें। इसके पश्चात् नियम पूर्वक यदि साधन भजन किया जायगा तो अवश्य ही सफलता मिलेगी इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। अनेक इतिहास इस विषय में साक्षी हैं।

भजन में आनन्द आने लगता है, मन कुछ स्थिर होजाता है तो आध घन्टे का भी ऐसा भजन चौबीस घन्टों के आनन्द का कारण बन जाता है, जिस दिन भजन में मन लग जाता है उस दिन आन्तरिक शान्ति का अनुभव होता रहता है जैसे एक बाल्टी पानी में एक या दो बून्द इत्र के डालने से समस्त जल सुवासित हो जाता है।

भजन से हमें लाभ हो, सफलता मिले इसके लिए सर्व प्रथम भजन के नियम जान लेने की आवश्यकता है मनुष्य के मन पर वातावरण का प्रभाव तुरन्त पड़ता है अतएव पहिले किसी ऐसे मनोरम स्थान की तलाश करनी चाहिए जहां बैठने पर चित्त की वृत्तियाँ एकाग्र होजायँ मन शान्त रहे। रजोगुणी और तमोगुणी स्थान पर भजन करने

से मन कदापि नहीं लगेगा। वायुमण्डल के अनुरूप ही मन में संकल्प विकल्प होंगे। यदि शुद्ध सतोगुणी स्थान होगा तो भजन में मन अनायास ही लगजायगा। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय सखा अर्जुन को भजन की विधि बताते हुए कहा कि :—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥

शुद्ध भूमि में पहिले कुशासन उसपर मृगचर्म उसपर श्वेतवस्त्र बिछा कर अपने आसन को न अति नीचा और न अति ऊँचा स्थापन करे और उस आसन पर बैठकर तथा मन को एकाग्र करके चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में किया हुआ अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे।

जितना पवित्र स्थान होगा उतना ही पवित्र भजन भी होगा। आपको यदि सब प्रकार से शुद्ध सत्गुणी स्थान प्राप्त करने में यदि असुविधा हो तो अपने घर में एक ऐसा निश्चित स्थान बना लीजिए जो केवल भजन के लिए ही सुरक्षित रहे, उस स्थान पर अन्य कोई कार्य रजोगुणी और

तमोगुणी न किया जावे। कुछ दिनों में उस स्थान का वायुमण्डल घर के अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक सुन्दर और भजन में सहायक बन जायगा। स्थान के साथ ही साथ भजन के निमित्त एक रिज़र्व पोशाक भी रहनी चाहिए जो भजन के अवसर पर ही प्रयोग की जाय। जैसे जज अपनी पोशाक पहिन कर कुरसी पर बैठता है तो उसमें जज की शक्ति आती है, यदि वह पोशाक न पहिने हो तो मुक़द्दमा फ़ैसल नहीं कर सकता। मिलीटरी का आदमी जब अपनी फ़ौजी पोशाक पहिन लेता है तो उसमें वीरत्व की भावनाएँ स्वाभाविक ही उदय होने लगती हैं। इसी प्रकार यदि पवित्र स्थान के साथ ही साथ भजन के उपयुक्त भजन की पोशाक का भी ध्यान रक्खा जायगा तो लाभ अधिक होगा।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्थान की पवित्रता के सम्बन्ध में तीन स्थानों पर कहा है। तेरहवें अध्याय में भी ऐसा संकेत है :—

**मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।**
**विविक्त देश सेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १३-१० ॥**

अर्थात्—मुझ परमेश्वर में एकीभाव से स्थितिरूप ध्यान योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकान्त और शुद्ध देश

में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना।

आगे चलकर भगवान् ने अठारहवें अध्याय में भी इस विषय पर प्रकाश डाला है :—

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौव्युदस्य च॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥

अर्थात्—हे अर्जुन! विशुद्ध बुद्धि से युक्त, एकान्त और शुद्ध देश का सेवन करने वाला तथा मिताहारी जीते हुए मन, वाणी, शरीर वाला और दृढ़ वैराग्य को भली प्रकार प्राप्त हुआ पुरुष, निरन्तर ध्यानयोग के परायण हुआ सात्विक धारणा से अन्तःकरण को वश में करके तथा शब्दादिक विषयों को त्याग कर और रागद्वेषों को नष्टकरे।

सत्वप्रधान स्थान का प्रभाव तो राजसी और तामसी पुरुषों पर भी तुरन्त पड़ता है फिर सतोगुणी व्यक्ति का तो कहना ही क्या? उसे तो ऐसे स्थान पर अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति भजन के समय होती है। भगवत्कृपा से जिन साधकों को बाहर जाने की सुविधाएँ प्राप्त हों तो उन्हें अवश्य उन सुविधाओं का सदुपयोग करना चाहिए

और ऐसे स्थानों में जाकर कभी कभी कुछ समय अभ्यास करना चाहिए जहाँ सत्संग की प्राप्ति हो, बहुत से साधक रहते हों, प्राकृतिक दृश्यों से सुरम्य पार्वत्य प्रदेश हो किसी पवित्र नदी जैसे पुण्य सलिला भागीरथी गंगा का तट हो। ऐसे स्थान पर कुछ दिनों अभ्यास करने पर जो लाभ होगा उसे तो ऐसा प्रयोग करने वाले भक्त ही समझ सकते हैं।

भजन प्रारम्भ करने के लिए आसन पर बैठने से पहिले स्वस्तिकासन, पद्मासन अथवा सिद्धासन से स्थिर होकर बैठना चाहिए। प्रारम्भ अवस्था में अभ्यास न होने से यदि अधिक देर एक आसन से न बैठ सकें तो बीच में आसन बदला जासकता है किन्तु मेरुदंड प्रत्येक आसन में सीधा रहना आवश्यक है। मेरुदंड झुकाकर बैठने से मन चंचल हो जायगा। मेरुदंड सीधा रहने से प्राण स्थिर होते हैं और प्राणों के स्थिर होने से मन स्थिर होता है क्योंकि प्राणों में मन व्यापक है।

भोजन का प्रभाव भी मन पर पड़ता है अतएव भजन करने वालों को सतोगुणी भोजन ही सदैव करना चाहिए।

"जैसा खावे अन्न वैसा बने मन"

इस प्रकार साँगोपाँग विधानपूर्वक आसन पर बैठकर पहिले कुछ देर अपने मन की गति विधि क ओर

सावधानी से ध्यान दें और मनको युक्ति पूर्वक समझाकर भजन में लगावें। अभ्यास होजाने पर मन अवश्य भजन में लगेगा। उस समय न तो शरीर का ही भान रहे और न संसार का भान रहे केवल जीवात्मा, मन और परमात्मा यह तीन ही रह जायें और जीवात्मा मन को परमात्मा में तद्रूप बनाकर लगादें इन्हीं तीन वस्तुओं का भान होना मन की स्थिरता है। "भक्ति के नव साधन" पुस्तक में 'मन से वार्तालाप' नामक प्रसंग में मन वश करने की सुन्दर युक्तियाँ समझाई गई हैं।

इस प्रकार के निरन्तर अभ्यास से यह मानव जीवन धन्य बन जाता है और अपने जीवन काल में ही अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति करते हुए और अन्तिम समय में प्रभु के पावन पादपद्मों में मन लगा कर जीवात्मा, परमात्मा से मेल पाजाता है, यही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है।



## गृहस्थाश्रम में भजन कैसे हो ?

अधिकाँश सज्जन प्राय: कहा करते हैं कि गृहस्थों का भजन यही है कि अपने बाल बच्चों का भरण पोषण करें उन्हें पढ़ा लिखा कर खाने कमाने के योग्य बनादें, बस, ऐसे महानुभावों के लिए पूज्यपाद गोस्वामी जी की यह चौपाई ठीक उतरती है :—

*मात पिता बालकन बुलाहिं,*
*उदर भरहि सोइ काम सिखावहिं ।*

ऐसे घातक विचार रखने वाले व्यक्तियों से यही कहना पर्याप्त है कि फिर मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं रहेगा मानव योनि का लक्ष्य तो परमार्थ साधन है न कि भोगों की प्राप्ति। भोगों की प्राप्ति तो इतर योनियों में अनायास ही होजाती है। अपने कुटुम्ब और बच्चों का लालन-पालन तो पशु पक्षी भी कर लेते हैं मनुष्य शरीर पाने से क्या लाभ।

हमारा प्राचीन उज्जवल इतिहास इस बात का साक्षी है कि गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी बहुत से पुरुषों ने अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति करली। महाराज जनक, धर्मराज युधिष्ठिर आदि अनेक ऐसे उदाहरण हैं। गृहस्थाश्रम तो ऐसा आश्रम है जिसकी सहायता से तीनों आश्रमों की व्यवस्था सुचारु रूप से होती थी। तब से और अब से

आकाश पाताल का अन्तर है। उस समय के गृहस्थ अपने लक्ष्य परमार्थ की ओर ध्यान रखकर ही जीवन के समस्त व्यवहारों को करते थे अतएव उनका तन, मन, धन सर्वस्व परोपकारमय बन जाता था यही कारण था कि वे सब प्रकार से इस संसार में सुखी रहकर अन्त में परम पद के अधिकारी बन जाते थे। उनकी पुनीत जीवन गाथा को पढ़कर आज भी हम आनन्द का अनुभव करते हैं। इस युग की तो बात ही निराली है, अब जैसी संकुचित भावनाएँ हैं वैसा ही वातावरण भी संकुचित होगया। आज सर्वत्र यही भावना है कि जिस प्रकार अपने शरीर और अपने शरीर से सम्बन्धित व्यक्तियों को सुख मिले, आराम से जीवन व्यतीत हो वही काम करना ठीक है। इसके लिए चाहे जितने छल कपट और दंभ करने पड़ें उन्हें करने में मनुष्य को तनिक भी हिचकिचाहट और संकोच नहीं होता। परमार्थ के मार्ग में भी यत्किंचित लगते हैं तो उसमें भी स्वार्थ भावना छिपी रहती है और कुछ नहीं तो मान बड़ाई और यश की प्राप्ति होजायगी। ऐसे विचार वाले व्यक्ति जब परमार्थ और परोपकार में लगते हैं. तब कभी प्रारब्ध वश संयोग से अपमान होने लगता है तो उनकी विचारधारा भिन्न दिशा की ओर प्रवाहित होने लगती है और पहिले वे जिस पथ के अनुयायी थे, जिस कार्य की प्रशंशा करते थे उसी के निन्दक बन जाते हैं। इस प्रकार वे अपना अहित

तो करते ही हैं किन्तु साथ ही सर्व साधारण के अहित में भी स्वयं कारण बन जाते हैं।

उपर्युक्त समस्या के समाधान में यही कहा जा सकता है कि यदि मनुष्य अपने लक्ष्य परमार्थ की ओर दृष्टि रखने का दृढ़ निश्चय करके जीवन की अन्तिम श्वाँस तक कृत संकल्प रहे तो वह अपनी गृहस्थी में बना रहकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है तथा अपने कल्याण के साथ ही अनेक व्यक्तियों के कल्याण में सहायक बन सकता है। परमार्थ पर लक्ष्य रखने से समस्त व्यवहार ही परमार्थ बन जाते हैं। जैसे चमेली और वेला के फूलों में बसाई हुई तिली का तेल जब निकाला जाता है तो फिर उसकी संज्ञा तिली का तेल नहीं वरन् चमेली अथवा वेला का तेल हो जाती है। गंदा नाला जब गंगा जी से मिलने की कामना लेकर चलता है तो वह गंगा जी में मिलकर स्वयं भी गंगा जी बन जाता है।

मानव योनि के चरम लक्ष्य परमार्थ की ओर अथवा ध्यान रखने के कारण ही शास्त्रों में "गृहस्थाश्रम" की भूरि भूरि प्रशंसा की गई है आज भी मनुष्य यदि इस मूल मंत्र पर ध्यान रक्खे कि हमारा लक्ष्य भोग नहीं वरन भगवान हैं तो यही नरक बना हुआ गृहस्थ जीवन नन्दन कानन जैसा सुखदाई बन सकता है और वस्तुतः परमार्थ को लक्ष्य

बनाने वाले ही गृहस्थी में रहकर भजन कर सकते हैं। यदि लक्ष्य परमार्थ न होकर भोग हैं तो उनका भजन असली नहीं नकली है, जैसे स्वर्ण और मुलम्मा।

अथवा लक्ष्य परमार्थ रहने पर दुकानदारी, नौकरी आदि प्रत्येक कार्य में परोपकार की भावना होने से समस्त व्यवहार परोपकारमय बन जायेंगे। सच्चे परोपकारी व्यक्ति बदले की भावना से परोपकार नहीं करते। दम्भ कपट और पाखंड का लेश उनके अन्तःकरण में नहीं होता। दुकानदार को चाहिये कि अपनी दुकान में शुद्ध वस्तुयें ही विक्रयार्थ रक्खे जितने पैसे ले ग्राहक को उतनी ही वस्तु दे। अनुचित लाभ की भावना का सर्वथा परित्याग करे। ग्राहक को शुद्ध वस्तु देकर उचित लाभ ले लेना भी परोपकार ही है। कोई दूकानदार यदि भजन पूजन तो खूब करता है किन्तु दुकान में बैठकर ऐसी भावना करता है कि कोई आंख का अन्धा और गाँठ का पूरा आ जाय। समय मिलने पर ग्राहक को भली प्रकार मूंड़ लेने के अवसर पर सावधानी से जो व्यक्ति दृष्टि रखता है, उसका वह भजन और पूजन निरा दम्भ है पाखंड है उसका लक्ष्य परमार्थ न होकर भोग ही है। सर्वत्र ऐसी भावना हो जाने के कारण आज का वातावरण बहुत दूषित हो गया है। दूकान पर बैठकर दूकानदार यह भूल जाता है कि

किसी समय मुझे भी ग्राहक बनकर बाजार से सौदा लाना होगा अपने शरीर स्त्री और बाल बच्चों के उदरपूर्ति के लिये यदि हम सैकड़ों व्यक्तियों का हलाल करते हैं तो क्या यह पाप नहीं है ? "उदाहरणार्थ" एक व्यक्ति दूध का व्यापार करता है उसकी दूकान पर कोई व्यक्ति दूध लेने आया और बोला भाई रोगी बालक के लिये शुद्ध दूध की आवश्यकता है कृपा करके शुद्ध दूध ही देना । दूकानदार की आँखों में तो स्वार्थ की पट्टी बंधी हुई है उसे तो अपने मुनाफे के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नही पड़ता उसकी तो भावना है कि अगर मैं सत्य व्यवहार करूंगा तो मेरी और मेरे बाल बच्चों की गुजर कैसे होगी ? अस्तु वह ग्राहक से कहता है कि दूध बहुत बढ़िया है और किसी दुकान पर इतना अच्छा दूध आपको मिल नहीं सकता अधिक लाभ के लोभ से उस दूध में पानी और अरारोट आदि पदार्थ मिला रहता है। जब वह दूध रोगी बालक को दिया जाता है तो उसके प्रयोग से वह रोगी शिशु अधिक रोगी होकर अकाल में काल कवलित हो जाता है कली खिलने के पहिले ही मुरझा जाती है । आप विचार करें इस हत्या का अपराधी कौन हुआ ? इस प्रकार अनेकों का कतल करके यदि हम अपने बाल बच्चों का भरण पोषण कर रहे हैं और संसार को धोखे में डालने के लिए नित्य भजन, पूजन और सत्संग भी कर रहे हैं

तो क्या भगवान प्रसन्न हो जाएंगे ? भगवान ऊपरी आडंबर और पाखण्ड में फंसने वाले नहीं हैं। उनका नाम तो अन्तर्यामी है वे तो अन्तर की भावना ही देखते हैं। अपने वर्णाश्रम धर्मानुसार आचरण के साथ साथ भजन करते हुए जीवन यापन से मुक्ति हो सकती है।

"स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभतेनरः"

आज मनुष्य का व्यवहार सर्वथा बिगड़ गया है घोर अशान्ति का यही कारण है। विरले ही ऐसे भाग्यवान होंगे जिनके मुख पर चिन्ता की रेखाएँ न हों। इस अशान्ति और चिन्ता को दूर करने के लिये व्यवहार शुद्धि की आवश्यकता है। शुद्धि का निरन्तर प्रयत्न करते हुए यदि भजन किया जायगा तो शीघ्र ही लाभ हो सकता है तथा भजन के वास्तविक आनन्द का अनुभव भी उसी दशा में हो सकता है। पहिले तो नरक के समान बनी हुई अपनी गृहस्थी के सुधार की आवश्यकता है। अपना लक्ष्य परमार्थ बनाकर जो कर्त्तव्य कर्म किए जाएँगे तो वे स्वधर्मानुसार किए हुए कर्त्तव्य समस्त जीवन को परोपकारमय बना देंगे। हमें उचित है कि जीवन पर्यन्त अपने लक्ष्य की ओर दृष्टि रखकर अपने शरीर और शरीर से सम्बन्धित कुटुम्बियों की रक्षा मात्र के लिए ही धनोपार्जन आदि व्यवहार करें। यदि भविष्य की चिन्ता के लिए परिग्रह की इच्छा जागृत

हुई तो हम अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हो सकते हैं। अपना सरल और सादा जीवन हो। संतोष की ढाल से प्रारब्धानुसार आई हुई विपत्तियों को अपनी परीक्षा समझ कर सहर्ष सहन करते हुए आगे बढ़ने की भावना लेकर निर्बाध गति से जीवन की मँजिलों को तय करने वाला प्रभु का प्यारा बन जाता है।

अपने लक्ष्य की ओर से सचेत रहने वाले व्यक्तियों को चाहिए कि वे माया के लिए सीमित पुरुषार्थ करें। अपनी दिनचर्या का एक निश्चित कार्यक्रम अपने पथ प्रदर्शक की आज्ञानुसार बनालें। नियम के सांचे में अपने जीवन को यदि ढाल दिया जाय तो जीवन सुन्दर और सुखमय बन जाता है तथा भगवान के मंगलमय चरणों में प्रेम निरन्तर बढ़ता रहता है। इसके विपरीत यदि दिनचर्या का क्रम अस्तव्यस्त रहेगा तो भजन नहीं बन सकता भजन ही क्या साँसारिक कार्य भी सुचारु रूप से नहीं हो पावेंगे और मस्तिष्क सदा एक उलझन में फंसा हुआ सा प्रतीत होगा।

*जहाँ नेम तहं प्रेम है, जहाँ प्रेम तहं नेम।*
*जा घर नेम न प्रेम है, ता घर कुशल न क्षेम॥*

अपने परिवार के समस्त सदस्यों का एक निश्चय कार्यक्रम बना देने से सब तुम्हारे भजन में सहायक बन जाएंगे। सूर्योदय से १॥ घण्टा पहिले सब को उठ जाना चाहिए,

बालकों को जगाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी वे तो स्वाभाविक ही तुम्हारा अनुकरण करेंगे। माया का कार्य अधिक से अधिक १२ घण्टे होना चाहिए, इससे अधिक माया की गुलामी मत करो। ६ घण्टे की निद्रा स्वस्थ पुरुषों के लिए पर्याप्त है, अधिक निद्रा अथवा आलस्य के वश में होना ठीक नहीं है। भोजन भी सादा सतोगुणी और निश्चित समय पर होना चाहिए। जिह्वा के स्वाद में अधिक ठूंस २ कर खाने वाले का भजन में मन नहीं लग सकता। भगवान श्रीकृष्ण ने इस संबन्ध में अपने सखा अर्जुन से कहा।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नाव बोधस्ययोगो भवति दुखहा ।। ६ । १७

अर्थात — यह दुःखों के नाश करने वाला योग तो यथा योग्य आहार और विहार करने वाले का तथा कर्मों में यथा योग्य चेष्टा करने वाले का और यथा योग्य शयन करने वाले तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

शयन का परित्याग करने के पश्चात शौच स्नानादि से निवृत होकर घर के सब व्यक्ति मिलकर सम्मिलित प्रार्थना करो। प्रार्थना के पश्चात यदि संभव हो तो घर से दूर किसी जलाशय अथवा नदी तट पर सुरम्य और मनोहर स्थान पर आसन बिछाकर नियम पूर्वक अपने इष्ट मन्त्र का जप और ध्यान करो। यदि ऐसी सुविधा न हो तो

अपने घर में ही एक ऐसा स्थान बनालो जो हर समय पवित्र रहे भजन के अतिरिक्त और किसी रजोगुणी अथवा तमोगुणी कार्य में उसका प्रयोग न हो। अन्यथा वहाँ का वातावरण भजन के अनुकूल नहीं रहेगा। प्रातःकाल ४ बजे से ७ बजे तक समस्त सायिक कार्यों को भूलकर अपने मन को केवल प्रभु के पुनीत चरणों में ही लगादो। दृढ़ संकल्प करो कि यह प्रातःकाल के तीन घंटे केवल भगवान के निमित्त हैं इन तीन घंटों में कोई भी सांसारिक संकल्प मन में न आवे अन्यथा भजन का आनन्द जैसा चाहिए वैसा नहीं रहेगा जैसे बालू का एक कण ही आंख के लिए दुखदाई हो जाता है ऐसे ही भजन के समय किसी प्रकार का संकल्प भजन के आनन्द में बाधक हो जाता है। प्रारम्भ काल में इस अभ्यास में अवश्य कुछ कठिनाई का अनुभव होगा किन्तु कुछ दिनों में अभ्यास करते रहने से मन वैसा ही बनकर भजन में सहायक बन जायेगा। इसी प्रकार सायंकाल को भी अन्य संसारिक कार्यों से निवृत होकर ७ बजे से १० बजे तीन घंटे केवल प्रार्थना सत्संग और भजन के लिए रिजर्व रक्खो। घर के और लोगों को प्रार्थना के बाद प्राताकाल सत्संग कराओ भक्त गाथा गीता रामायण आदि अन्य किसी ग्रन्थ का पाठ करो ऐसा होने से उन लोगों का व्यवहार भी शुद्ध हो जायेगा और वे सब ही भगवद्भक्त बन कर भजन में

सहायक हो जायेंगे, और परस्पर प्रेम की भावनाओं से व्यवहार करेंगे । तब यही नरक बना हुआ गृहस्थ जीवन वैकुंठ धाम जैसा सुखद बन जायेगा । और लोग तुम्हारे अनुकरणीय परिवार की प्रशंसा करके उदाहरण में रक्खेंगे । घर के बाद इसी प्रकार मुहल्ले में सत्संग का आयोजन करो । सत्संग इस संसार में सबसे बड़ा उपकार है सत्संग ही एक ऐसा अमोघ साधन है जिसके सहारे मानव ८४ लाख फांसियों के फन्दों को छिन्न भिन्न करके शाश्वत शान्ति लाभ कर लेता है ।

यदि केवल बालू की ही दीवाल बनाई जाय तो प्रथम तो दीवाल बनेगी ही नहीं और यदि बन गई तो शीघ्र गिर जायेगी यदि उस बालू में सीमेंट छठा अंश भी मिला दिया जाये तो वही दीवाल पत्थर की बन जाती है इसी प्रकार माया के सब कार्य भी बालू की भांति हैं । यदि इनमें परमार्थ रूपी कुछ सीमेन्ट मिल जायगा तो वही बालू की दीवाल सुदृढ़ बन जायगी ।

घर में हर समय माया की चर्चा मत करो । व्यर्थ की वार्ता घर के वायुमण्डल को अशुद्ध कर देती है अपनी गृहस्थी को भगवान शँकर और पार्वती की गृहस्थी की भांति बनाने का प्रयत्न करो । भगवान शंकर और पार्वती में माया की चर्चा का वर्णन किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता, परमार्थ की

चर्चा का ही वर्णन मिलता है। परमार्थ की चर्चा होती रहने से घर का वायुमण्डल शुद्ध हो जायगा। एक स्थान पर स्लेट अथवा तख्ता टाँग दो और अपनी धर्मपत्नी को सत्संग के द्वारा हृदयंगम करा दो कि हर समय की माया की चर्चा परिणाम में दुखदायी होती है। एक स्थान पर स्लेट अथवा तख्ती टांग दो जिसमें आवश्यक वस्तुओं की सूची लिखी रहे। ऐसा प्रयोग होने से समय की बचत होगी व्यर्थ की वार्ता से समय नष्ट नहीं होगा और बचे हुए समय में परमार्थ चर्चा होने से बहुत लाभ होगा।

अपनी शुद्ध कमाई में से दशवाँश, सोलहवाँश अथवा बत्तीसवां अंश सतोगुणी दान के लिए अवश्य निकालना चाहिए। दान किए बिना धन की शुद्धि नहीं होती। दान करते समय इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि हमारे धन का दुरुपयोग न होने पावे। देश और काल के अनुसार दान करने से जनताजनार्दन की उचित सेवा हो जाती है।

जिस प्रकार अपनी शुध्द कमाई से अपनी परिस्थिति के अनुसार दान करना आवश्यक है इसी प्रकार अपने समय का दान करना भी बहुत आवश्यक है। दिन में एक घण्टा महीने में एक दिन और वर्ष भर में कम से कम १५ दिन माया के कार्यों से छुट्टी लेकर किसी एकान्त और पवित्र

स्थान में जाकर रहना चाहिए जहां सत्संग सेवा और परोपकार का सुअवसर मिल सके।

**तन पवित्र किए सेवा धन पवित्र दिए दान ।**
**मन पवित्र किए भजन ते तब उपजेगा ज्ञान ॥**

इस प्रकार सतत अभ्यास करते रहने से तन मन और धन के पवित्र हो जाने से अन्तःकरण की शुद्धि हो जाती है तब आन्तरिक ज्ञान और भक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है। युक्ति में ही मुक्ति है। इन युक्तियों का आश्रय लेकर मनुष्य परम भक्त बन जाता है अन्तिम समय में भगवान का स्मरण करता हुआ सदा के लिए उनकी चिर शान्ति दायिनी गोद में विश्राम पा जाता है।

**अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।**
**यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥**



# ❀ हमारे मन की चालाकी ❀

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः"

अर्थात — मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का मन ही मूल कारण है मन ही जीव को चौरासी लाख योनियों के भयंकर और असीम दुखद प्रवाह में भटकाता है और मन ही जीव को उसके अधिष्ठान परमात्मा तक पहुँचाने में सहायक बन जाता है मनुष्य यदि अपने मन को अपने अनुकूल बना सके तो मानो उसने त्रैलोक्य जय कर लिया किन्तु यह मन इतना चालाक है कि बड़े २ बुद्धिमान विद्वान और महात्मा तक इसके चक्कर में आजाते हैं। भगवान की असीम अहैतुकी दया से इस देव दुर्लभ नर देह की प्राप्ति इसीलिये होती है कि इस दुर्जय मन को जीत कर जीव अपने बन्धन की चौरासी लाख शृंखलाएं छिन्न भिन्न करदे किन्तु यह मन इतना नालायक है कि अपने अनन्त जीवनों के स्वभाव के कारण ऐसा सुअवसर पाकर भी पुनः जीव को यातनाओं के गम्भीर गर्त में ले जाता है। संसार में जो इसकी चालाकी को समझ गया जो इसके बहकाने में नहीं आया वही इस संसार सागर से पार होगया।

**मन के मते न चालिये मन के मते अनेक।**
**जे मन पर असवार हैं ते लाखन में एक॥**

भगवान श्रीकृष्ण ने अपने परम प्रिय सखा अर्जुन से

कहा कि अपने मन को एकाग्र करके आत्मा को परमात्मा में लगावे । इस संबन्ध की व्याख्या भगवान के श्रीमुख से सुनकर अर्जुन ने कहा कि यह तो अत्यन्त दुष्कर कार्य है ।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

अर्थात — हे कृष्ण ! यह मन बड़ा चंचल और प्रमथन स्वभाव वाला है इसलिये इसका वश में करना मैं वायु की भाँति अति दुष्कर मानता हूँ । भगवान ने अर्जुन की इस बात का समर्थन किया परन्तु यह भी कहा कि अत्यन्त कठिन और दुरूह होने पर भी इसका वश में करना मनुष्य के लिए असम्भव नहीं है ।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ६ । ३५

अर्थात — अर्जुन के ऐसा कहने पर भगवान बोले हे महाबाहो ! निसंदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है परन्तु हे अर्जुन अभ्यास अर्थात स्थिति के लिये बार बार यत्न करने से और वैराग्य की भावना से यह वश में हो जाता है इसलिये इसको अवश्य वश में करना चाहिए । इसे वश में किए बिना मनुष्य को किसी प्रकार की सफलता और सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती ।

मन को वश में करने का अभ्यास करने वाले महा पुरुषों को यह मन अपनी चालाकी से नीचे गिराने का प्रयत्न सदा करता रहता है। किन्तु जो भाग्यशाली व्यक्ति इसकी चालाकी को समझकर इससे सावधान होजाते हैं उनका यह फिर कुछ बिगाड़ ही नहीं पाता। व्यवहार में भी प्रायः देखा जाता है कि जब हम एक बार किसी कपटी या चालाक आदमी से धोखा खा जाते हैं तो फिर सदैव के लिए उससे सावधान हो जाते हैं। और कभी उससे व्यवहार का अवसर आने पर ऐसी युक्ति से व्यवहार करते हैं कि अब आगे इसके फन्दे में फंसकर किसी प्रकार की हानि उठानी न पड़े। मनुष्य की चालाकी और कपट तो स्पष्ट दृष्टिगोचर होजाता है किन्तु इसकी चालाकी को जानना बहुत कठिन है क्योंकि यह तो जीव का मित्र बन कर उसे ठग लेता है। बाहर के चोर डकुओं से सावधान रहना तो सरल है किन्तु अपना मित्र यदि घात करके छिपे २ हानि पहुंचाता रहे तो उससे सचेत हो जाना बड़ा कठिन ही कहा जायगा। ठीक यही दशा जीव के बने हुए परम मित्र किन्तु परिणाम में महाभयंकर शत्रु इस मन की है।

जब असाध्य रोगी के रोग की परीक्षा करने में कठिनाई होती है तो कुशल डाक्टर उसके रक्त की जाँच करते

हैं रोगी के शरीर से जो रक्त निकाला जाता है उसे देखकर किसी रोग का अनुमान नहीं लग सकता। डाक्टर उस रक्त को शीशे पर रखते है और अणुवीक्षण यन्त्र से उसे देखते हैं तब उन्हें यन्त्र की सहायता से स्पष्ट दृष्टि-गोचर होता है कि इस रक्त में मलेरिया हैजा टायफायड अथवा जीर्णज्वर के कीटाणु हैं रक्त को टेस्ट करने के लिए जैसे अणुवीक्षण यन्त्रकी आवश्यकता है इसी प्रकार मन को टेस्ट करने के लिए विवेकनी बुद्धि ही अनुवीक्षण यन्त्र है जिस प्रकार रक्त में रोगों के कीटाणु होते हैं इसी प्रकार इस मन में भी अनन्त वासनाओं के कीटाणु होते हैं सत्संग की सहायता परिमार्जित बुद्धि रूपी यन्त्र उन कीटाणुओं की परख कर लेती है तब इस दुर्जय मन पर विजय पा लेना सरल हो जाता है। अपनी बुद्धि को परिमार्जित अथवा सतोगुणी बनाने का सदैव प्रयत्न करते रहना आवश्यक है। बुद्धि यदि सतोगुणी नहीं है तो मन की चालाकी परखना असंभव है।

गिरगिट जैसे अपने रंग बदला करता है ऐसा ही इन मनोराम जी का भी हाल है। जिस प्रकार के समुदाय में यह मिल जाते हैं वैसे ही बन जाते हैं और शीघ्र ही प्रवाह में बहने लगते हैं। यह कभी कामी कभी क्रोधी और कभी लोभी बन जाते हैं। महात्मा और सत्संगी सज्जनों के बीच में

रहकर यह बड़े परोपकारी सदाचारी और भक्त भी बन जाया करते हैं। भगवत्कृपा से कभी कोई सुन्दर कार्य बन पड़ा तो अपनी प्रशंसा सुनने के लिए बहुत लालायित हो जाते हैं। कभी २ बुद्धि और मन की पहिचान होनी ही बहुत कठिन हो जाती है जैसे मुलम्मा और स्वर्ण की परख करना बहुत कठिन होजाता है। ऐसा ही मन और बुद्धि में भी हो जाता है। मन और बुद्धि की ठीक २ पहिचान सत्संग के द्वारा ही हो सकती है अन्य कोई मार्ग नहीं है। जिस प्रकार नाई हजामत बनाने के लिए जैसे पहिले अपने छुरे को बार २ सिल्ली पर घिसता है तो उसे हजामत बनाने में कठिनाई नहीं होती है क्योंकि बार २ सिल्ली करने से उसका छुरा तेज होजाता है।

इसी प्रकार अपनी बुद्धि को तेज करने के लिए अर्थात सतोगुणी बनाने के लिये नित्य सत्संग की बहुत बड़ी आवश्यकता है। सत्संग के अभाव में मन बलवान हो जाता है और बुद्धि निर्बल हो जाती है तब मन बुद्धि को डरा धमकाकर अपने वश में कर लेता है किन्तु जब बुद्धि बलवान होती है तो मनीराम की नहीं चलने पाती तब वे एक कोने में दब कर बैठ जाते हैं।

एक कुत्ता यदि निर्बल हो और दूसरा कुत्ता बलवान हो तो फेंकी हुई रोटी का टुकड़ा बलवान कुत्ता जबरदस्ती

खा जायगा निर्बल कुत्ता लोभ से उठेगा किन्तु उसके भय के कारण एक कोने में दुम दबाकर बैठ जायगा ऐसे ही मन और बुद्धि का हाल है। दोनों में जो एक बली होगा उसी की विजय होगी। समान बल वाले कुत्तों में जैसे खूब लड़ाई होती है ऐसे ही कभी २ बुद्धि और मन में भी आन्तरिक युद्ध हो जाता है। बुद्धि कहती है सत्संग करो भजन करो अथवा परोपकार करो। मन कहता है सत्संग में उतनी दूर जाने से क्या लाभ घर पर ही कोई ग्रन्थ का स्वाध्याय कर लेंगे। अभी गर्मी बहुत पड़ती है रात बहुत छोटी होती है नींद पूरी नहीं हो पाती प्रातःकाल शीघ्र उठ बैठेंगे तो स्वास्थ्य खराब हो जायगा सर्दी के दिनों में भजन आरम्भ करेंगे। और परोपकार का प्रसंग आने पर कहेगा कि आजकल जमाना बहुत खराब है, तेजी के दिन हैं लड़कियों के विवाह करने हैं इतना पैसा यदि दान परोपकार में खर्च हो जायगा तो फिर काम कैसे चलेगा इत्यादि। बुद्धि में यदि विशेष सतोगुण हुआ तो वह मन की इन चालाकियों में न फंसकर निर्णय कर लेती है कि यह नर देह क्षणभंगुर है। न जाने कब प्राण पखेरू उड़ जायं। इसलिए तुरन्त सत्संग और भजन में प्राणपण से लग जाना चाहिए। वहां के लिए कुछ पाथेय भी तो चाहिए अतएव जीते थके परोपकार और दान करने की बहुत आवश्यकता है मान लीजिए कल ही शरीर छूट गया

तब बाद में कौन आकर लड़कियों के विवाह करेगा। यह सब व्यर्थ की बातें हैं सब कुछ भगवान का ही है वे ही अपने आप संभाल करेंगे। बुद्धि की ऐसी अकाट्य तर्कों से मनीराम बेचारे मौन होजाते हैं और एक आज्ञाकारी बालक की भांति बुद्धि के अनुसार प्रत्येक कार्य में तत्पर हो जाते हैं। तैल धारावत ऐसी तत्परता बनी रहने से साधक एक दिन सिद्ध बनकर भगवत्साक्षात्कार, मुक्ति, अथवा अमर पद प्राप्त कर लेता है। ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए सर्व-श्रेष्ठ और युक्ति-संगत केवल एक ही मार्ग है कि मनुष्य किसी ऐसे महापुरुष की छत्रछाया में रहे जिन पर अनेक भक्तों की श्रद्धा और विश्वास हो कि जिनके पुनीत चरणों में बैठते ही मन के संकल्प शान्त होजाय, जिनके प्रति ऐसा आन्तरिक विश्वास हो जाय कि इनकी अहेतुकी कृपा से मेरा बेड़ा पार हो सकता है। जब जन्म जन्मान्तर के संचित पुण्य बल से ऐसा संयोग बन जाय तब जीव के कृतार्थ होने में सन्देह नहीं रहता। ऐसे महापुरुष को अपना पथ प्रदर्शक बनाकर उनके सामने निस्संकोच अपने मन के दोषों को निष्कपट भाव से रख देना चाहिये। यदि तनिक सा भी दुराव होगा तो यथोचित लाभ नहीं होगा। जैसे यदि रोगी अपने रोग के कारणों को डाक्टर से छिपाएगा तो उसका रोग कैसे दूर हो सकता है। जैसे शीशम की लकड़ी में जितना अंश

कच्चा होता है वहीं घुन लग जाता है। इसी प्रकार थोड़ा सा भी भेद रखने से अपने दोष निकल नहीं सकेंगे। मन की इस चालाकी के चक्कर में नहीं आना चाहिये कि यदि मैं अपने दुर्गुण प्रकट कर दूंगा तो मेरी बेइज्जती होजायगी, लोग मुझे गिरी हुई दृष्टि से देखेंगे। वास्तविकता तो यह है कि अपने दोषों को प्रकट करने वाले ही अपने जीवन का उत्थान कर सके हैं। इसका ज्वलन्त उदाहरण इस युग के महापुरुष महात्मा गांधी हैं। वे अपने दोषों का वर्णन जनता-जर्नादन के सामने निष्कपट भाव से कर देते थे। यही रहस्य है कि वे सर्वगुणसम्पन्न बनकर विश्व-वन्द्य बन गए।

अपने अन्तःकरण की शुद्धि का इससे सरल और सुखद दूसरा कोई मार्ग नहीं है। यदि ऐसे महापुरुष की प्राप्ति न हो सके तो अपने दोषों को अपने सजातीय अर्थात् सतोगुणी मित्र से कह दो। मित्र के प्रति अपने दोषों को प्रकट करने से भी लाभ होगा और दोषों में बृद्धि नहीं होने पावेगी। जिस प्रकार अपने दुःखों का वर्णन करने से हृदय का भार हल्का हो जाता है इसी प्रकार दोषी मन के दोषों का बखान करने से मन भी अवश्य निर्मल बन जायगा। सावधानी से अपने दुर्गुणों पर दृष्टि रख कर जो वीर पुरुष अपने मन के दोषों को अपने पथ प्रदर्शक

मित्र अथवा जनता के सामने रख देते हैं उनकी बुद्धि मन के निर्मल हो जाने से सूक्ष्म हो जाती है । सूक्ष्म बुद्धि मन की चालाकी को तुरन्त पकड़कर सचेत हो जाती है ।

सूर्योदय से कमसे कम १॥ घन्टा ब्रह्म मुहूर्त में उठकर शौच स्नानादि से निवृत्त होकर भगवान की विश्वास के सहित जीती जागती प्रार्थना करो। प्रार्थना में अपनी वृत्तियाँ लगा देने से बुद्धि को बल मिलेगा । सतोगुणी समय होने से उस समय अपने मन के सब दोष स्पष्ट दिखाई देंगे। तब अपने एक २ दोष को दूर करने के लिये सच्चे हृदय से भगवान से प्रार्थना करो कि हे दीनबन्धो करुणासागर दयानिधे आपने अपनी असीम अहैतुकी दया से मुझे यह देव दुर्लभ मानव शरीर प्रदान किया है किन्तु जन्म जन्मान्तर का यह अपराधी मेरा मन मुझे नीचे गिराना चाहता है । आपकी दयाका ही एकमात्र सहारा है अन्यथा पतन निश्चित है। प्रार्थना के साथ ही पूज्यपाद गोस्वामी जी के ऐसे पद जो उन्होंने विनय पत्रिका में अपने मन के संबंध में लिखे हैं उन्हें गाओ और उन पर मनन भी करते जाओ। नित्य ऐसा करनेसे अवश्य सफलता मिलेगी।

एक डायरी बना लो जिसमें अपने दोषों और मन की चाल बाज़ी को लिखते जाओ। भले ही वह डायरी चाहे और किसी

को न दिखाओ, स्वयं ही उसे देखते रहो । ऐसा नियम बना लेने से भी बहुत लाभ होगा । दूसरों के अवगुणों की ओर दृष्टिपात न करके उनमें जो गुण हैं उन्हें ही देखो । दूसरों का छिद्रान्वेषण करने से अपने भीतर अवगुणों की वृद्धि होती है, मन को प्रोत्साहन मिलता है इसके विपरीत गुण दृष्टि होने से अपने में गुणों की वृद्धि होती है, अपने गुणों को तो कदापि न देखो अन्यथा अभिमान हो जायगा और गुण निकल जायेंगे।

मनुष्य के मन पर वातावरण का प्रभाव तुरन्त पड़ता है अतएव अपने साँसारिक माया के कार्यों से अधिक से अधिक समय निकालकर सतोगुणी और साधक व्यक्तियों के समुदाय में रहने का स्वभाव बनाओ । मन की शुद्धि के लिए यह बहुत सरल साधन हैं । अकेले रहकर मनुष्य का सुधार होना असंभव है । यह परम चतुर मन अकेले रहने से प्रत्येक दशा में अपनी अनुकूलता का अवसर निकाल लेता है । उदाहरण के लिए यदि सिद्धासन या पद्मासन लगाकर आप एकान्त में भजन करने बैठेंगे तो मन आलस्य के वश में होकर ऊंघने लगेगा, माला हाथ से छूट जायगी। किन्तु यदि साधकों के बीच रहेगा तो मन को भय बना रहेगा कि मुझे कोई ऊंघते न देख ले अतएव वह सदा सचेत रहता है । 'भय बिनु होय न प्रीति' वाली कहावत

के अनुसार जब उसका स्वभाव साधकों के बीच में रहते रहते ठीक बन जाता है तो फिर सफलता में कुछ सन्देह नहीं रह जाता।

उपर्युक्त कतिपय साधनों के द्वारा इस बहिर्मुखी मन को अन्तर्मुखी बनाकर मनुष्य भव-पाश से मुक्त होसकता है यदि मन को स्वाधीन छोड़ दिया गया तो फिर यह जीती हुई बाजी हार जायगी। इस मानव शरीर की प्राप्ति मन को बुद्धि के अनुकूल बनाने के लिए ही हुई है। मनमानी करने की ही बात होती तो फिर यह मनुष्य शरीर क्यों मिलता ?

जो न तरइ भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मन्द मति आत्माहन गति जाइ॥

# भजन करें या परोपकार ?

भजन शब्द 'भज सेवायाम्' धातु से बना है अतएव भजन और सेवा में कोई अन्तर नहीं है ! प्रायः ऐसी शंका भक्तों को होती है कि भजन श्रेष्ठ है अथवा परोपकार, दोनों में अपेक्षाकृत किस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ? ऐसे जिज्ञासु भक्तों को यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि आवश्यकता दोनों की ही है । जिस प्रकार प्यास के समय शीतल जल की और क्षुधा के समय सुन्दर भोजन की आवश्यकता होती है इसी प्रकार भजन के समय भजन की और सेवा के समय सेवा की आवश्यकता है । प्यास जल से और क्षुधा भोजन से ही शान्त हो सकती है । ऐसे ही परोपकार का अवसर आने के समय भजन से संसार का काम नहीं चल सकता ।

नाई जिस प्रकार अपने छुरे पर सिल्ली भी लगाता है और हजामत भी बनाता है । यदि वह केवल उस्तरे पर धार ही लगाता रहे तो हजामत कैसे बन सकेगी ? इसी प्रकार उस्तरे पर धार लगाना तो भजन है और हजामत बनाना परोपकार करना है । यदि भजन किए बिना परोपकार किया जावेगा तो वह परोपकार शुद्ध नहीं होगा । उस परोपकार में स्वार्थ छिपा होने से जनता का हित होने की अपेक्षा अहित की संभावना अधिक हो सकती है । यद्यपि परोपकार करना

श्रेष्ठ है किन्तु एक दृष्टि से भजन उससे भी श्रेष्ठ है। तात्पर्य यह कि यदि भजन और परोपकार दोनों के रहस्य को भलीभाँति समझकर प्रवृत्त होने से अपने अन्तःकरण की शुद्धि के साथ २ जनता जनार्दन की उचित सेवा हो सकती है। केवल भजन से अथवा केवल परोपकार से अहंकार का प्रादुर्भाव हो जायगा जो पतन का मूलकारण है। आज के युग की ऐसी परिस्थिति का कारण यही है कि केवल एक ही अंग को लेकर चलने की शिक्षा मिलती है। भजन करने वाले केवल भजन को ही उत्तम बताकर निवृत्ति मार्ग का उपदेश करते हैं। और परोपकार से मुंह मोड़कर एकान्त वास का समर्थन करते हैं। देश सेवा अथवा परोपकार का समर्थन करने वाले महानुभाव भजन करने वालों की हंसी उड़ाते हैं उनकी सम्मति से भजन करना समय को व्यर्थ नष्ट करना है शास्त्र के मतानुसार वास्तव में तो दोनों ही एकांगी होने के कारण भ्रम में हैं। भजन और परोपकार का पारस्परिक इतना गम्भीर सम्बन्ध है कि जैसे दो पहियों पर गाड़ी चलती रहेगी तो ठीक है यदि एक पहिया टूट जायगा तो गाड़ी आगे नहीं चल सकती देश की वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। भजन अर्थात अध्यात्म-वाद का आश्रय न लेने से देहाभिमान की उन्नति होगई। देहाभिमानी व्यक्ति मन और इन्द्रियों के दास बनकर देश सेवा और परोपकार की आड़ में अपना स्वार्थ साधन करते

हैं। हित होने के स्थान पर जब जनता का अहित होता है तब जनता आलोचना करती है कि भजन करने वाले और परोपकारी दोनों ढोंगी हैं। यदि भजन और परोपकार के रहस्य को समझकर दोनों को यथोचित रूप से देश और काल के अनुसार क्रिया रूप में परिणित किया जावे तो अपना भव्य भारत देश पुनः अपनी प्राचीन गौरव गरिमा को प्राप्त कर जगद्गुरु बन सकता है। प्राचीन काल में उसके जगद्गुरु बनने का यही रहस्य था कि उस समय दोनों अंग स्वस्थ थे। भगवत्कृपा से शताब्दियों के पश्चात दासता की शृंखलायें छिन्न भिन्न हो चुकी हैं। अब अवसर आगया है कि हम अपने कर्तव्य को पहचान कर भजन और परोपकार के द्वारा अपने अन्तःकरण की शुद्धि से देश की वास्तविक उन्नति में सहायक हों।

भजन के साथ जो परोपकार किया जायगा उसमें निष्काम भावना होने से दूसरों पर प्रभाव पड़ेगा अपने अन्तःकरण की शुद्धि होगी। परोपकार रहित मनुष्य निश्चय ही स्वार्थी बन जायगा उसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं रह सकता। स्वप्न में भी उसे अपने पड़ोसी नगर अथवा देश की चिन्ता नहीं होगी। वह तो केवल अपने शरीर के पालन पोषण में ही लगा रहेगा और अपने शरीर से सम्बन्धित स्त्री पुत्रादि कुटुम्बियों तक ही उसका संसार सीमित रहेगा। जैसे तेली का बैल

जिस स्थान से घूमता है उसी स्थान पर पुनः २ पहुँचता रहता है ऐसे ही देहाभिमानी और परोपकार रहित होने के कारण उसे पशु, पक्षी वृक्ष पाषाण आदि की योनियों में विवश होकर जाना पड़ेगा। मानव शरीर की प्राप्ति परोपकार द्वारा अपने चारों ऋणों से उद्धार पाने के लिये ही होती है।❀

माता पिता, देश, देवता, और ईश्वर इन चारों की कृपा से यह शरीर बना है। यदि हम इन ऋणों से मुक्ति पाने का प्रयत्न नहीं करेंगे तो इन योनियों में परवश होकर ऋण चुकाना ही पड़ेगा। घोड़ा तांगे में जोता जाता है दिन भर तांगे में सवारियों को इधर से उधर पहुंचाकर ८) या १०) पैदा करता है ३) या ४) रुपये का उसे दाना आदि खाने को मिल जाता है और शेष रुपये उसके पुराने ऋण के हिसाब में मुजरा होते जाते हैं। इसी प्रकार वृक्ष बनकर फल फूल और लकड़ियों के द्वारा पिछला भुगतान करना पड़ता है। मानव शरीर में जो कर्ज होगया है उसे जन्म जन्मान्तर में अदा करने के लिये जीव विवश होकर परोपकार करता है।

मनुष्य ऐसा कृतघ्नी है कि उसे अपने पर किये गये प्रभु के अनन्त उपकारों की कभी याद ही नहीं आती। यदि वह उन उपकारों के लिये माता पिता, देश, देवता, और

❀ इस विषय की विस्तृत व्याख्या के लिये साधन-प्रदीप नामक पुस्तक देखिये। प्रकाशक

भगवान को धन्यवाद भी दे और हृदय से स्वीकार करे कि मैं इनसे कभी उऋण हो ही नहीं सकता तो भी कुछ अच्छा है जैसे किसी व्यक्ति पर किसी के रुपये चाहिये हों और अपनी परिस्थिति के कारण वह उन्हें इस समय देने में विवश होकर यह स्वीकार कर ले कि भविष्य में अनुकूल अवसर आते ही निपटा दूंगा तो भी उसे छुटकारा मिल जाता है। इसी प्रकार मनुष्य पर अनेक ऋण हैं यदि वह उन्हें स्वीकार करके उनके उऋण होने की भावना से सबका हार्दिक धन्यवाद भी करे तो उसका अन्तःकरण मलिन नहीं होने पावेगा और वह अधोगति को प्राप्त नहीं होगा।

हिंसक पशु और विषधर जीव भी परोपकार करते हैं सर्प और बिच्छू विषैली वायु को पीकर नाइट्रोजन से शुद्ध बनाते रहते हैं। तब यदि मनुष्य-शरीर पाकर परोपकार की भावना न हो, तो फिर क्या कहा जाय। शरीर का पर्याय वाची शब्द देह है अर्थात कुछ देने के लिए जीव को मनुष्य शरीर मिला है।

देह धरे का धर्म यह देइ देइ कछु देइ।
देह जबहिं छुट जायगी तब कौन कहेगा देह॥

शरीर से प्राण पखेरू उड़ जाने पर इसका नाम देह

नहीं रहता। तब इसे सब मिट्टी के नाम से सम्बोधित करते हैं अस्तु शरीर में प्राण रहते इस मिट्टी का सदुपयोग भजन और परोपकार द्वारा करना अपना प्रमुख कर्तव्य समझना वास्तविक मनुष्य का द्योतक है। श्रीमद्भागवतकार बादरायण भगवान वेदव्यास का वचन है।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परिपीड़नम्॥

जगद्गुरु भारत का प्राचीन गौरवमय इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहां जितने भी महापुरुष हुए हैं जिनकी कीर्ति पताका अनन्तकाल से लहरा रही है जिनकी पुण्य गाथाओं का श्रवण और मनन करके हम आज भी अपने मन में शान्ति का अनुभव करते हैं वे सभी महापुरुष आदर्श परोपकारी हुये। सेवा और परोपकार की भावना लेकर ही अखिल ब्रह्मांड नायक जगत पिता जगदीश्वर मनुष्य देहको धारण करते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम और लीला पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण की प्रत्येक लीला और क्रिया में आपको सेवा और परोपकार ही छिपा मिलेगा। भगवान की लीला से हमें जो शिक्षा मिलती है उसके अनुरूप अपना जीवन बनाने का पुरुषार्थ करना चाहिये।

सारांश यह है कि मनुष्य अपनी दिनचर्या में भजन के

साथ २ परोपकार के लिये भी समय निर्धारित कर ले। वह दृढ़ निश्चय करे कि दिन भर में कुछ न कुछ परोपकार अवश्य करना है। इस प्रकार भगवान के स्मरण से देहाभिमान को नष्ट करते हुये जो भाग्यशाली व्यक्ति अपने जीवन की अन्तिम श्वाँस तक परोपकार में रत रहते हैं। ऐसे स्मरणीय पुरुषों का स्थान भगवान के चिर मंगलमय धाम में सुरक्षित रहता है वे ऐसे परमधाम की प्राप्ति कर लेते हैं जहां से उन्हें फिर कभी लौटकर नहीं आना होता।

*न तद्भासयते सूर्यो न शशाँको न पावकः।*
*यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम॥*

परहित बस जिनके मन माहीं।
तिन कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

# ❀ भगवान जो करेंगे सो होगा ❀

"होइहै सोइ जो राम रचि राखा"

प्रातः स्मरणीय कविकुल चूड़ामणि पूज्यपाद गोस्वामी जी विरचित श्री रामचरितमानस की एक चौपाई के सम्बन्ध में प्रायः भक्त जन शंका करते हैं कि जो कुछ होने वाला है वह होकर ही रहता है अर्थात हम जो कुछ भी करते रहे हैं अथवा भविष्य में जो कुछ करेंगे वह तो भगवान ने पहिले से ही बना रक्खा है। प्रसंग के रहस्य को न समझकर अपने मन से ऐसे अर्थ लगाने से कभी २ अर्थ का अनर्थ होजाता है। भगवान् शङ्कर ने जब श्री सती जी का परित्याग मन से किया था उस प्रसंग से पहिले की यह चौपाई है। प्रथम उन्होंने सती जी को भली प्रकार समझाया था कि जिन्हें तुम राजा का पुत्र समझ रही हो वे ही अखिल ब्रह्मांड नायक परमेश्वर हैं। धर्मस्थापन तथा असुरों का संहार करने के लिए इस रूप में अवतरित हुए हैं। भगवान शंकर के अनेक प्रकार से समझाने पर भी जब सती जी की शंका का समाधान न होसका और वे हठ पूर्वक बन-यात्री भगवान श्रीराम की परीक्षा करने चली गई उनके चले जाने के उपरान्त भगवान शंकर ने

विचार किया कि मेरे इतना समझाने पर भी इनके संशय की निवृत्ति न होसकी तब भला परीक्षा लेने से संशय कैसे मिटेगा ? इस समय ऐसा जान पड़ता है कि विधाता वाम है जो सती जी की ऐसी बुद्धि हुई है। भगवत्प्रेरणा से जो कुछ होने वाला है वह तो अब होकर ही रहेगा, अधिक तर्क से अपने को क्या लाभ ?

मोरेहु कहे न संशय जाहीं ,
विधि विपरीत भलाई नाहीं ।
होइहै सोइ जो राम रचि राखा ,
को करि तर्क वढ़ावइ साखा ।

नीचे वाली दूसरी चौपाई का शब्दार्थ तो साधारण रूप से यह ठीक ही है कि मनुष्य स्वयं कुछ नहीं करता जो कुछ करता है वह ईश्वर ही करता है अथवा अच्छा या बुरा जो कुछ होता है वह भगवान की प्रेरणा से ही होता है। ऐसा अर्थ लगाने वालों की दृष्टि केवल शब्दार्थ पर ही रहती है कारण कि वे भावार्थ और लक्ष्यार्थ से सर्वथा अनभिज्ञ हैं । भावार्थ और लक्ष्यार्थ का परिज्ञान न होने से पाठक मनमुखी होकर अर्थ का अनर्थ कर डालते हैं किसी तत्त्ववेत्ता संत के सत्संग के द्वारा ही मानस के रहस्य को भली प्रकार समझा जा सकता है। अपनी बुद्धि

से अर्थ लगाने से 'अधिकांश में भूलें होसकती हैं , मनुष्य सदैव अपनी धारणा के अनुसार ही अर्थ लगाते हैं। गोस्वामी जी ने एक स्थल पर इस चौपाई का प्रतिवाद भी किया है :-

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा ,
जो जस करइ सो तस फल चाखा ।

इस प्रकार परस्पर विरोधी कथन को पढ़कर साधारण बुद्धि का व्यक्ति चक्कर में पड़ जाता है। जैसे यदि किसी मशीन के पुर्जे अलग २ रक्खे हों तो उन्हें मशीनमैन ही यथास्थान लगाकर फिट कर सकता है, ठीक इसी प्रकार अपने संतों और शास्त्रों के वचन हैं जिनके भावार्थ और लक्ष्यार्थ को संत चरणों में बैठकर समझा जा सकता है ।

तात्पर्य यह कि घड़ी के पुर्जे की भाँति मानस की परस्पर विरोधी अनेक चौपाइयाँ अपने २ स्थान पर उपयुक्त हैं जिनका समन्वय होने से हम उनके रहस्य को समझ सकते हैं यूं तो संसार की इस नाट्यशाला के रंगमंच पर उसी नटवर की प्रेरणा से लीला होती है किन्तु यदि इस बात का आधार लेकर मनुष्य अपने हाथ पर हाथ रखकर बैठा रहा तो खेल बिगड़ जायगा। संत और शास्त्र इस सम्बन्ध में एकमत हो कर कहते हैं कि यह देव-दुर्लभ नर-देह कर्मयोनि है,

इस मानव शरीर रूपी क्षेत्र में जो कर्म रूपी बीज बोए जाते हैं वेही भविष्य में फलस्वरूप प्राप्त होते रहते हैं। पूर्व के अनन्त जन्मों के संचित कर्म ही प्रारब्ध रूप में हमारे सामने आकर सुख अथवा दुःख की सृष्टि करते हैं। इस प्रकार सिद्ध होता है कि अपने शुभ कर्मों द्वारा हम अपना प्रारब्ध स्वयं ही निर्माण करते हैं। लीला पुरुषोत्तम पार्थ-सारथी भगवान श्यामसुन्दर ने अपने प्रियतम सखा अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन तेरा कर्म करने का अधिकार है, फल दैवाधीन है अर्थात पहिले मनुष्य का कर्तव्य वेदोक्त शुभ कर्म करने का है। केवल दैव और प्रारब्ध की ओर दृष्टि रखना आलसी और बुद्धिहीन व्यक्तियों का मार्ग है।

*कायर मन कर एक अधारा,*
*दैव दैव आलसी पुकारा।*

कोई किसान यदि वर्षा होने के उपरान्त अपने खेत को न जोते और न उसमें बीज डाले और कहे कि 'होइहै सोइ जो राम रचि राखा' तो उसके खेत में कितने मन अन्न की उपज होगी? कोई विद्यार्थी परीक्षा से पहिले पढ़ना लिखना बन्द कर अपना बहुमूल्य समय व्यर्थ में नष्ट करते हुए कहे कि "होइहै सोइ जो राम रचि राखा"

तो उसके कथन से आप क्या समझेंगे ? वह क्या बी० ए० अथवा एम० ए० कभी हो सकेगा ? कदापि नहीं। पहिले ठीक समय पर किसान परिश्रम करके अपने खेतों को जोते, उनमें नियमानुसार बीज डाले, खेतों की रक्षा करे, तब वह कहने का अधिकारी है कि "होइहै सोइ जो राम रचि राखा" पहिले विद्यार्थी घोर परिश्रम करे और विद्यालय में कभी अनुपस्थित न रहे तब किसी प्रश्न करने वाले को ऐसा उत्तर देने का वह अधिकारी है। पुरुषार्थ हीन व्यक्ति यदि इस चौपाई का उदाहरण देते हैं तो वे परले सिरे के मूर्ख हैं। भगवान शंकर ने पहिले सती जी को भली प्रकार समझाने की पूरी चेष्टा की किन्तु जब सती जी हठ पर अड़ी रहीं और भगवान श्रीराम की परीक्षा लेने चलीं गई तब भगवान शंकर ने कहा था कि 'होइहै सोइ जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावइ साखा। यदि सती जी को समझाने के पूर्व ही शंकर भगवान ऐसा कहते तो इस प्रकार का अर्थ लगाया जा सकता था।

पुरुषार्थ और प्रारब्ध का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि वे भिन्न नहीं किए जा सकते, किन्तु दोनों में पुरुषार्थ ही प्रधान है। योगवाशिष्ठ के पाठक जानते हैं। कि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री रामचन्द्र को महर्षि वशिष्ठ ने पुरुषार्थ का ही उपदेश किया है, प्रारब्ध अथवा दैव के आधीन रहने वालों

की उन्होंने बहुत निन्दा की है । पुरुषार्थ प्राणिमात्र का कर्म क्योंकि कर्म किए बिना मनुष्य रह नहीं सकता ऐसा गीता में भगवान ने स्वयं श्री मुख से कहा है।

न हि कश्चित क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत ।

यद्यपि यह सत्य है कि हमारा पुरुषार्थ मात्र में ही अधिकार है फल-प्राप्ति में हम पराधीन हैं किन्तु यह भी ध्रुव सत्य है कि हमारे द्वारा जैसे कर्म होंगे फल भी उन्हीं के अनुसार प्राप्त होगा। यदि शुभ कम हुये तो फल भी शुभ होगा और अशुभ कर्म होंगे तो फल भी अशुभ होगा। जैसा बीज होगा वैसा वृक्ष होगा। मिर्च का बीज पृथ्वी में बोने से मिर्च और गन्ने का बीज बोने से गन्ने की प्राप्ति होगी। सुख और दुख की यही संक्षिप्त व्याख्या है अतएव मनुष्य को उचित है कि वह सावधानी से अपने प्रत्येक कार्य पर दृष्टि रक्खे। विवेक बुद्धि के द्वारा शास्त्रोक्त कर्म में अपनी परिस्थिति के अनुसार संलग्न रहने से निश्चय ही हमारा यह मानव जीवन सफल हो जायगा। इसके विपरीत शास्त्र विधि को त्यागकर यदि मन्मुखी होकर कर्मों में प्रवृत्त रहे तो न इस लोक में सुख की प्राप्ति होगी और न परलोक में। भगवान ने स्वयं अर्जुन से कहा है :-

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम ॥

अनन्त जन्मों के कर्मों से बनी हुई प्रारब्ध के अनुसार जीव भगवान की असीम अहैतुकी कृपा से मनुष्य शरीर प्राप्त करता है । किसी का जन्म राजा के यहां होता है, जन्म लेते ही उसके नाम से जागीरें लिख जाती है, बैंकों में धनराशि जमा होजाती हैं । अनेक दास दासियाँ सेवा के लिए तत्पर रहते हैं । इसके विपरीत किसी का जन्म फूस के झोपड़े में जहाँ कठिनाई से भोजन सामिग्री एकत्रित होती है ओढ़ने के लिए फटे चीथड़े प्राप्त होते हैं और बड़े होने पर अपने पिता का ऋण चुकाने के लिए विवश होता है । शुभ और अशुभ कर्मों की फल प्राप्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है । राजा के यहाँ जन्म लेने वाले राजकुमार ने कौनसा पुरुषार्थ इस जीवन में किया जो उसे अपार वैभव और ऐश्वर्य की प्राप्ति जन्म लेते ही होगई और फूस की झोपड़ी में जन्म लेने वाले ने कौनसा अपराध किया जो जन्म लेते ही उसे संकट का सामना करना पड़ा दोनों प्रकार के इन परस्पर विरोधी उदाहरणों से स्पष्ट विदित होता है कि इस संसार में कर्म ही प्रधान है और विधाता का यही विधान है ।

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा ।
जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥

# भजन करने वाले दुःखी क्यों, पाप करने वाले सुखी क्यों !

प्रायः लोग शंका करते हैं कि अमुक व्यक्ति कितना दुराचारी है, पाप कर्म में प्रवृत्त रहता है किन्तु तो भी सब प्रकार से सुखी है और अमुक सज्जन भगवद्भक्त हैं परोपकार में लगे रहते हैं किसी का बुरा नहीं सोचते किन्तु आए दिन उन्हें संकटों का ही सामना करना पड़ता है। अच्छे कर्म का फल यदि शुभ होता तो भगवद्भक्त को सदा सुखी रहना चाहिए था और दुराचारी अन्यायी व्यक्ति को दंडरूप दुःख की प्राप्ति होनी चाहिए थी ? केवल वर्तमान को देखने से तो ऐसी शंका का होना उचित ही है किन्तु अपने पिछले बीते हुये अनन्त जन्मों के कर्मों को तो हम जानते ही नहीं हैं। विगत जन्मों में हमारे द्वारा कितने पुण्य कर्म हुये और कितने पाप कर्म हुये ? आज जो व्यक्ति अधर्माचरण करके भी सुखी प्रतीत होता है तो वह अपने संचित प्रारब्ध की कमाई में से व्यय कर रहा है जब उसके संचित पुण्य नष्ट हो जायेंगे तब वह आज के दुराचार का फल दुखों के रूप में भोगने के लिये बाध्य होगा और आज जो भक्त और सदाचारी होकर भी संकटापन्न हैं वे अपने संचित पाप कर्म रूपी ऋण का परिशोध कर रहे हैं एक दिन जब संचित पापकर्मों की राशि समाप्त हो जायगी तो आज के शुभ कर्म भविष्य में स्थाई रूप से

सुख रूप में उनके सामने आवेंगे। जिस प्रकार किसी व्यक्ति ने अपना धन बैंक में जमा कर दिया हो और वह घर पर बैठे २ बैंक से मगाकर व्यय करता रहे तो एक दिन अवश्य ही उसकी धन राशि समाप्त होजायगी तब वह बैंक से एक कानी कौड़ी भी नहीं पासकता और दूसरा व्यक्ति जो बैंक का ऋणी है वह पिछले ऋण का भुगतान करता जा रहा है जब सब रकम चुकता होजायगी तब भविष्य में धन एकत्रित होने लगेगा।

अतएव वेदोक्त पुरुषार्थ का आश्रय लेकर पहिले "कर्म प्रधान विश्व रचि राखा" का सम्पुट लगाकर कर्तव्य पथ पर अग्रसर होना चाहिए और फल की प्राप्ति के सम्बन्ध में "होइहै सोइ जो राम रचि राखा" की भावना होनी चाहिये।

शुभ और अशुभ कर्मों के परिणाम को साधारण तया तो हम अपनी बुद्धि से समझ ही सकते हैं किन्तु जीव अपने संचित कर्मों का रहस्य समझने में सर्वथा असमर्थ है। किस समय किस रूप में हमें सुख अथवा दुःख की प्राप्ति होगी इसे हम नहीं जान सकते। प्रायः देखा जाता है कि किसी व्यक्ति को अनायास धन की प्राप्ति हो जाती है। और किसी की अचानक हानि हो जाती है, इसके मूल कारण से अनभिज्ञ होने के कारण

हम आश्चर्य चकित हो जाते हैं। जैसे एक नवीन ग्राहक एक दुकान पर गया, उसने देखा दुकानदार अपनी दुकानदारी में व्यस्त है, उसके पास एक व्यक्ति आया और कुछ रुपये जमा करके चला गया दूसरा व्यक्ति आया जिसने सामान तो बहुत सा ले लिया किन्तु दुकानदार को उन वस्तुओं का मूल्य न देकर सामान लेगया। बैठा हुआ नवीन ग्राहक आश्चर्य पूर्वक यह लीला देखता रहा। कुछ देर बाद एक तीसरा व्यक्ति जो दुकान के सामने से जा रहा था उसे नौकर के द्वारा बुलाकर दुकानदार ने क्रोध में भरकर कहा कि आज आपके तीन महीने बाद दर्शन हो रहे हैं, अपनी भलाई चाहते हो तो अभी रुपये दाखिल कीजिये अन्यथा मैं आपको पुलिस के हवाले करता हूँ। बैठा हुआ नवीन ग्राहक ऐसा कांड देखकर दुकानदार से बोला, भाई! यह तुम्हारा बड़ा अन्याय है कि एक निरपराध व्यक्ति को इस प्रकार अपमानित कर रहे हो। अभी तो आपसे एक व्यक्ति सामान भी लेगया तो भी आपने उससे कुछ नहीं कहा और इस बेचारे ने तो आपकी दुकान से अभी कुछ लिया भी नहीं है तो आप इसे क्यों परेशान कर रहे हैं। दुकानदार बोला तुम चुप रहो इस बीच में तुम्हारा बोलने का कोई अधिकार नहीं है। तुम्हें क्या मालूम कि इन्होंने तीन महीने पहिले उधार सामान लिया था अभी तक रुपये नहीं दिए हैं वही मैं मांग रहा हूँ और जो

तुम कहते हो कि पहिले जो व्यक्ति सामान लेगया है उससे तो एक पैसा भी नहीं लिया सो वह तो पहिले से ही रुपये जमा कर गया है, तुम हमारे वहीखाते की बात किस प्रकार समझ सकते हो ? ऐसा सुनकर वह नवीन ग्राहक मौन होगया। इस दृष्टान्त का दार्ष्टान्त यह है कि जैसे वह नवीन व्यक्ति उस दुकानदार के वही-खाते की लिखा पढ़ी और जमा खर्च आदि के हिसाब से अनभिज्ञ है इसी प्रकार अल्पज्ञ जीव अपने पूर्व जन्मों के संचित प्रारब्ध की बात जानने में सर्वथा असमथ है किन्हीं संचित पाप कर्म के परिणाम में जब अचानक हानि अथवा दुख और संकट आजाते हैं तो भगवान पर भी दोपारोपण करने लगता है यह उसकी भयंकर भूल है। वास्तव में तो उसे पूज्यपाद गोस्वामी जी के शब्दों में निश्चय कर लेना चाहिए।

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता॥

मनुष्य अपने शुभ अथवा अशुभ कर्मानुसार जो अनन्त जन्मों में संचित हो चुके हैं उन्हीं को सुख अथवा दुख के रूप में भोगता रहता है।

किसी दुराचारी और पापिष्ठ को धनधान्य और सुख से सम्पन्न देखकर तथा सदाचारी और पुण्यात्मा को सदा

दुखी देखकर बहुधा साधारण बुद्धि के व्यक्ति सन्मार्ग से विचलित होकर कुमार्ग का समर्थन करने लगते हैं यह उनकी भयंकर भूल है।

एक कालेज के दो विद्यार्थी अपनी पढ़ाई समाप्त कर अपने घर पहुँचे। एक ही नगर के निवासी थे और घनिष्ट मित्र थे किन्तु दोनों के स्वभाव में आकाश पाताल का अन्तर था। एक तो भगवद्भक्त और सदाचारी था दूसरा दुराचरण में प्रीति रखने वाला और वेश्यागामी था परस्पर विरोधी भावना होने पर भी दोनों में मैत्रीभाव था। वेश्यागामी मित्र अपने सहपाठी के भजन पूजन तथा सदाचार आदि की मखौल उड़ाया करता था जिसे सुनकर वह संत सेवी, साधुप्रकृति का युवक हसकर टाल दिया करता था और अपने मित्र के व्यंग्य बचनों को तनिक भी परवाह नहीं करता था। कुछ दिनों बाद प्रारब्धानुसार सदाचारी युवक रोग से पीड़ित रहने लगा। कभी जुकाम कभी खाँसी कभी सर दर्द आदि की पीड़ा से म्लान मुख हो गया साथ ही दुर्भाग्य से उसे व्यापार में भी हानि हो गई, इसके विपरीत वह दुराचारी युवक दिनों दिन फलता गया, व्यापार में पर्याप्त लाभ होने लगा, जिस कार्य में हाथ लगाता उसी में उसे लाभ होता। एक दिन दोनों मित्र मिले। परस्पर कुशल प्रश्न पूछने के पश्चात् उसने

देखा कि मेरा मित्र सदा रोगी बना रहता है, मुखपर चिन्ता की रेखायें खिची हैं ऐसा देखकर व्यंग्य करते हुये बोला अरे यार! तुम निरे पोंगा ही रहे व्यर्थ ही अपने जीवन को बरबाद करने में लगे हो, भला कलियुग के समय में भजन पूजन और सत्संग भी कोई अर्थ रखता है? यह सब लकीर का फकीरपन है पूजा पाठ और भक्ति में कोई तत्त्व नहीं है। मेरी ओर देखो हट्टा कट्टा हूँ कभी सर में दर्द भी नहीं होता मेरा तो सिद्धान्त है कि "खाओ पियो मौज करो" तुम्हीं बताओ इतने दिनों की भक्ती से तुम्हें क्या सुख मिला मैं तो तुम्हें हर समय संकट में ही देखता हूँ। छोड़ो इस झगड़े को और मेरे साथ रहकर जीवन के सुखों का उपभोग करो युवक मौन होकर अपने मित्र की बातों को सुनता रहा उसने कुछ उत्तर नहीं दिया, अपने मन में उस समय वह भी विचार करने लगा कि वास्तव में आजकल भजन पूजन और भक्ति मार्ग में जीवन व्यतीत करने का समय नहीं है। ऐसे विचारों से मन में संकल्प विकल्प करते हुये वह अपने घर चला गया। दूसरे दिन नित्य नियम के अनुसार जब वह मन्दिर से पूजा पाठ समाप्त करके लौट रहा था, सायंकाल का समय था अंधकार फैल चुका था, वह युवक नंगे पैरों आरहा था मार्ग में उसके पैर में कांच का एक बड़ा सा टुकड़ा घुस गया, रक्त की धारा प्रवाहित हो चली और वह पीड़ा से कराह उटा। संयोग से

उसी समय मदिरा के नशेमें मस्त उसका मित्र वेश्या के घर से लौटरहा था अपने मित्रकी ऐसी दशा देखकर उसने कपड़ा फाड़ कर पट्टी बांधी, कांच गहरा घुस गया था अतएव दर्द के कारण बुरा हाल था। किसी न किसी प्रकार उसने घर पर पहुँचाया चारपाई पर लिटाकर वह भी पास ही बैठ गया और बोला कि तुम मेरा कहना न मानकर स्वयं ही दुख झेल रहे हो और चार दिन के इस जीवन को व्यर्थ के कार्य में नष्ट कर रहे हो मेरा कहना मानो तो यह सभी दुख नष्ट हो जायं। अनेक संकटों को झेलते रहने से उसका हृदय सम्मोहित होरहा था।वेश्यागामी युवक बोला तुम्हें एक और शुभ समाचार सुनाऊं ऐसा कहकर अपनी जेब से नोटों की एक गड्डी निकालकर बोला देखो अभी २ उधर से आते समय यह सौ सौ रुपये के पचास नोट मुझे सड़क पर पड़े हुये मिले हैं भगवान ने मौज करने के लिये मेरे पास यह सम्पत्ति भेज दी अब तो कुछ दिनों चैन की वंशी बजेगी। एक आप हैं जो आपको भजन पूजन के अपराध में ऐसा दंड मिला है।

मनुष्य पर जब बहुत से संकट लगातार आते रहते हैं तो वह साहस हीन हो जाता है। भगवत्कृपा से विरले ही संकट काल में स्थिर बुद्धि रह पाते हैं। अस्तु, उसकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो चली, उसका विश्वास डगमगा गया, अस्फुट स्वर से उसने विचलित होकर कहा हाँ अब तो ऐसा ही अनुभव होरहा है कि यह सब व्यथ ही है। अपने मन के अनुकूल

उत्तर पाकर दूसरा मित्र मन ही मन प्रसन्न होरहा था कि अब यह भी मेरा सहयोगी बन जायगा। कुछ देर बाद वह अपने घर चला गया।

दूसरे दिन दैवयोग से उस नगर में एक त्रिकालज्ञ ज्योतिषी आए जो हस्त-सामुद्रिक तथा जन्मपत्र के अच्छे ज्ञाता थे। पिछले जन्मों की बात भी वे भृगुसंहिता के आधार पर बता देते थे। उनकी प्रशंसा सुनकर वह सत्संगी युवक अपना जन्म पत्र ज्योतिषी को दिखाने के विचार से घर से चला रास्ते में मित्र का घर भी पड़ता था कौतूहलवश उन्हें भी साथ लेलिया। ज्योतिषी ने पहिले भक्त युवक की जन्म पत्र, हस्तरेखा बहुत देर तक देखी तब तक उसने बताना आरम्भ किया। विगत जीवन की जितनी भी बातें ज्योतिषी ने बताई वे अक्षरशः सत्य निकलीं, किस समय कौनसा रोग हुआ क्या हानियां हुई सब बातें ठीक २ बतादीं। दोनों आश्चर्यचकित से सुनते रहे। अब ज्योतिषी ने पूर्व जन्म की बातें बतानीं आरम्भ कीं उसने कहा कि पिछले जन्मों के अमुक पाप के कारण तुम्हारी अमुक हानि हुई। इस जीवन के पुण्य फल तथा तुम्हारी भगवत्प्रीति के कारण अनेक पापों के परिणामों की भयंकरता बहुत स्वल्प सी होकर तुम्हारे समक्ष आई है। विगत जन्म के तुम्हारे एक भयंकर पाप के फलस्वरूप कल तुम्हें शूली के द्वारा प्राणदंड मिलना चाहिए था किन्तु तुम्हारे इस जीवन की भक्ति

भावना और सदाचारमय जीवन व्यतीत होने के कारण उस शूली के स्थान पर पैर में काँच का टुकड़ा ही लगकर रहगया, अब तुम्हारे दुखों का अन्त होगया, भविष्य में तुम्हारा जीवन सुखमय व्यतीत होगा। ऐसा सुनकर उसका विश्वास भगवान के चरणों में भली प्रकार से दृढ़ होगया दूसरा मित्र बड़े ध्यान से सब कुछ सुन रहा था। उसने भी अपना जन्म पत्र ज्योतिषी को दिखाया। जन्मपत्र और हस्तरेखा आदि देखकर ज्योतिषी ने कहा कि अबतक तुम अपनी पिछली कमाई ही खाते रहे हो तुम्हारे दुराचरण के कारण तुम्हें अशर्फी के स्थान पर कौड़ी प्राप्त हुई है। पिछले जन्मों में तुमने बहुत यज्ञ दानादि किए थे कि जिनका फल तुम्हें वृहत रूप में मिलना चाहिए था कल का संयोग तो ऐसा था कि तुम्हें एक राज्य की प्राप्ति होनी चाहिये थी किन्तु इस जीवन के पाप कर्मों के कारण तुम्हारे पुण्य का संचय समाप्त होकर केवल पाँच हजार रुपये ही रह गये। अब भविष्य में तुम्हें अनेक दुखों का सामना करने के लिए तत्पर रहना चाहिए कारण कि तुम्हारे संचित पुण्य समाप्त होचुके हैं अब पापों का परिणाम सामने आना स्वाभाविक है। अपने सम्बन्ध का ऐसा सत्य वर्णन सुनकर उस दुराचारी युवक के अन्तःकरण में पश्चाताप की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी अश्रुपात करते हुये उसने अपने मित्र से कहा कि मैं भयंकर भ्रम में था,

तुम्हीं सत्य मार्ग के पथिक हो मैं तुम्हें भी पथ भ्रष्ट करना चाहता था भगवान की कृपा से तुम बच गये अब मैं तुम्हारा अनुसरण करूंगा। इस दृष्टान्त का तात्पर्य यही है कि किसी साधन के द्वारा यदि जीव अपने संचित प्रारब्ध को जानले तब तो वह प्रत्येक काय सतर्क होकर कर सकता है किन्तु ऐसा होना तो सम्भव नहीं है अतएव कल्याणकामी मानव को उचित है कि अपने शास्त्रों की मर्यादानुसार महापुरुषों के पदचिन्हों पर चलकर अपने जीवन को सदा के लिये सुखमय बनाले अन्यथा जीती हुई बाजी हार जाने पर पछिताने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगेगा।

महाभारत का भयंकर युद्ध समाप्त होजाने के पश्चात लीला पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्णचन्द्र महाराज धृतराष्ट्र को सान्त्वना देने उनके समीप गये। धृतराष्ट्र ने भगवान से प्रश्न किया कि आप महान योगेश्वर हैं सब कुछ जानते हैं भूत भविष्य और वर्तमान तीनों काल की बात जानते हैं आपसे कुछ छिपा नहीं है। आपकी कृपा से मैं भी अपने पिछले सौ जन्मों का हाल जानता हूँ, उन सभी जमों की गाथायें मुझे भलीभाँति स्मरण हैं मैंने अपने पिछले सौ जन्मों में कोई पाप नहीं किये, मेरी मति सदैव शास्त्र विहित शुभ कर्मों में ही लगी रहती थी

इस प्रकार पुण्य राशि संचित होने पर भी मुझे अपने इस जीवन में एक सौ एक पुत्रों का वियोग सहन करना पड़ रहा है ! मेरे किस अपराध से मेरे जीवित रहते मेरे पुत्रों को काल कवलित होना पड़ा ? यह कैसा न्याय है ? पुत्रों के वियोग से अत्यन्त दुखी कातर धृतराष्ट्र और गान्धारी को प्रिय बचनों से शान्त करते हुये भगवान श्यामसुन्दर बोले महाराज कर्म का रहस्य बड़ा गहन है अल्पज्ञ जीव किसी सीमा तक ही उस रहस्य को समझने में समर्थ है आपको अपने विगत सौ जन्मों का हाल तो विदित है किन्तु इसके पहिले एक सौ एकवें जन्म की बातें आपभी नहीं जानते यदि आप उस जीवन का इतिहास भी जानते होते तो कदाचित आपको ऐसा भ्रम नहीं होता । यह निश्चित सत्य बात है कि मनुष्य स्वयं ही अपने कर्मों द्वारा अपने भाग्य का निर्माण करता है अपने संचित शुभ और अशुभ कर्मों के फलस्वरूप जीव को सुख अथवा दुख की प्राप्ति होती है, विधाता का यह अटल विधान है । आप अपने एक सौ एकवें जन्म में भी इसी प्रकार सम्राट ही थे, वैभव और ऐश्वर्य की कमी नहीं थी, किन्तु आपके शरीर में एक भयानक रोग उत्पन्न होगया था जिसके कारण आपको अपना जीवन भार स्वरूप जान पड़ता था । आपके राज्य के सभी वैद्य चिकित्सा करके हार गये किन्तु आपका वह रोग बढ़ता ही गया । संयोग

से किसी दूर देश का एक वैद्य आपके राज्य में आया उसकी प्रशंसा सुनकर आपने उस वैद्य को भी बुलाकर दिखाया। बहुत कुछ सोच विचार कर उस वैद्य ने आप को परामर्श दिया कि यदि आपके शरीर में हंस नामक पक्षी का तेल निकाल कर मर्दन किया जाय तो आपका यह रोग नष्ट होसकता है किन्तु इसमें एक सौ एक हंसों की हत्या का जघन्य पाप करना पड़ेगा। असह्य वेदना और सदा के लिये रोग से मुक्त होने की प्रबल इच्छा से विवश होकर एक सौ एक हंसों की हत्या कराकर आपने अपने लिये औषधि तयार कराई थी इस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये आपने दान पुण्य और परोपकार का मार्ग अपनाया। पिछले सौ जन्मों में आप कभी धर्म से विचलित नहीं हुये यही कारण था कि विगत जन्मों में आपको अपने उस पाप का प्रतिफल नहीं मिला। इतना सुनकर धृतराष्ट्र बोले! इस जीवन में भी तो मैंने कोई पाप नहीं किया फिर भला मुझे ऐसी भयंकर मानसिक वेदना क्यों होरही है क्या सौ जन्मों के संचित पुण्य बल से उस पाप का प्रायश्चित पूर्ण नहीं हुआ? भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र ने उत्तर दिया कि प्रज्ञाचक्षु होने के कारण आपको अपनी सन्तान का मोह बहुत प्रबल था, आपने अपने पुत्र दुर्योधन के दुष्कर्मों का कभी प्रबल विरोध नहीं किया सब कुछ जानते हुये भी आप मौन जैसे ही रहे, यदि कभी कहा भी तो दबी जबान

से ही कहा । द्यूतक्रीड़ा के द्वारा जब पांडवों का सर्वस्व हरण करने का कुचक्र होरहा था तब क्या आप कुछ बोले थे ? भरी सभा में एक वस्त्राद्रोपदी को घसीटता हुआ जब दुःशासन लाया था और जब दुर्योधन से आज्ञा पा कर वह उसे नग्न करने में तत्पर हुआ था तब आपने अपने पुत्रों का कौनसा विरोध किया था ? लाक्षागृह निर्माण करके पांडवों को समाप्त करने की दुष्मंत्रणा से भी तो आप परिचित थे ? पाप का समर्थन करना अथवा उसका विरोध न करना भी एक प्रकार से पाप ही है। इनके भयंकर पापों के सामने आपके सौ जन्मों के संचित पुण्य दब गए और एक सौ एक जन्म वाला पाप उदय होगया। आप जानते हैं कि बहुत समय से यदि जल का अवरुद्ध मार्ग खुल जाता है तो वह प्रबल बेग से निकलता है इसी प्रकार आपके पाप का परिणाम इस रूप में आपके सामने आया वे एक सौ एक हंस जिनकी हत्या करके आपने अपने प्राणों की रक्षा की थी, इस जन्म में आपके पुत्र हुये और आप के जीते सब के सब युद्ध में मारे गये। पाप का परिणाम तो अवश्यम्भावी है, ऐसा सोचकर आप शोक न करें और अपनी मनोवृत्तियाँ भगवत्चिन्तन में लगादें क्योंकि जो होने वाला था सो हो चुका है अब बीती हुई घटना को सोचने से क्या लाभ ? धृतराष्ट्र को सान्त्वना देकर भगवान श्याम-सुन्दर उनसे आज्ञा लेकर पाँडवों के यहां चले गये।

युक्ति प्रमाण तथा शास्त्र प्रमाण से हमं सदैव यही शिक्षा मिलती है कि हमारा प्रत्येक क्षण सार्थक हो, हमारे द्वारा स्वप्न में भी किसी का अहित न हो वरन सब प्राणियों को सुख पहुँचाने की भावना जागृत रहे इसी में मानव जीवन की सफलता है। यदि संयोग से कभी संकट और आपत्तियों का अवसर आजाय तो समझना चाहिये कि हमारे पापों का ही यह परिणाम है।



# पाप और पुण्य मनुष्य स्वयं करता है या भगवान कराते हैं ?

यह प्रश्न बहुधा केवल नास्तिक लोगों में ही नहीं, बल्कि उन भ्रमित आस्तिकों के मन में भी उठ जाता है जो कि सत्संग से वंचित रहे हैं। यह प्रश्न साधारण प्रश्न नहीं है। इसके समझ लेने से मनुष्य पक्का आस्तिक और न समझने पर पक्का नास्तिक भी बन सकता है इसमें केवल समझ का अन्तर है। वास्तविकता तो यह है कि पुण्य कर्म तो भगवान कराते हैं। और पाप कर्म मनुष्य स्वयं अज्ञानता वश होकर करता है। किन्तु पाप और पुण्य दोनों कर्मों के फल का भोक्ता मनुष्य ही है यद्यपि पाप और पुण्य दोनों के क्रियान्वित होने की शक्ति या सत्ता ईश्वर के ही द्वारा आती है तथापि पुण्य कर्म भगवान की निज प्रेरणा से होता है और पाप कर्म मनुष्य अपनी इच्छा से करता है।

उक्त विषय को हम एक साधारण उदाहरण के द्वारा ही स्पष्ट समझ सकते हैं — वह यह कि गवर्नमेंट का नौकर जज, जो कि न्यायाधीश भी कहलाता है, सभी अपराधियों को दंड देता है। किन्तु यदि न्यायाधीश स्वयं ही किसी व्यक्ति को अपराध

करने के लिए प्रेरित करे तो सोचिए कि क्या वह उस व्यक्ति को उसके अपराध का दंड देना चाहेगा ? कदापि नहीं। और यदि मान लीजिए कि दंड दे भी दिया तो इसका परिणाम यह होगा कि वह न्यायाधीश की उपाधि से रहित होजायेगा। इसी प्रकार ईश्वर, जिसे हम सर्वोच्च न्यायकारी भी कहते हैं, भला स्वयं पाप करवाकर पाप का दण्ड कैसे दे सकता है। ऐसा करने से वह अन्यायी न हो जायेगा ? उसके आज तक न्यायकारी होने का सर्वमान्य प्रमाण यह है कि क्या सनातनी, क्या आर्यसमाजी क्या जैनी क्या ईसाई, क्या पारसी और क्या मुसलिम सभी धर्म वाले उसे अब तक न्यायकारी ही कहते आये हैं। कोई भी धर्म उसे अन्यायी नहीं बतलाता। इससे सिद्ध हुआ कि ईश्वर न्यायकारी है। और न्यायकारी होने के नाते वह स्वयं पाप कैसे करवा सकता है। पाप वृत्ति तो मनुष्य स्वयं ही करने लगता है। भगवान नहीं कराते।

मनुष्य के अन्दर जन्म से ही दो शक्तियों का समावेश हो जाता है। एक शक्ति तो वह है जो कि कोई भी कर्म करने की आज्ञा सी प्रदान करती है और दूसरी शक्ति वह है जो कर्म का विरोध करती है। कर्म भी दो प्रकार के होते हैं एक शुभ और एक अशुभ। अशुभ कर्मों में लगाने वाली शक्ति का नाम है मन इन्द्रियां और शुभ कर्म में प्रेरित करने की शक्ति का नाम है बुद्धि। जब हम शभ करते हैं। हमें एक

आन्तरिक शक्ति सहयोग देती है । और जब हम बुरा यानी नीति विरुद्ध कार्य करते हैं एक आन्तरिक शक्ति उसमें रुकावट डालती है ।

जब हम कोई बुरा कर्म करने को उद्यत होते हैं तो अन्दर से आवाज आती है कि ऐ महाशय ! तुम यह बुरा कर्म करने जा रहे हो । इसी शक्ति का नाम, जो बुरे कर्मों से रोकती है, बुद्धि है। बुद्धि साक्षात् भगवान का एक स्वरूप है भगवान ने अपनी वाणी से गीता में स्पष्ट कहा है कि "बुद्धिबुद्धि मतामस्मि" अर्थात बुद्धिमानों में जो उत्कृष्ट बुद्धि प्रतीत होती है वह मेरा ही स्वरूप है इस प्रकार शुभ कर्म करते समय कोई आन्तरिक रुकावट न होने का तात्पर्य यह है कि भगवान यह कर्म कराना चाहते हैं । उनकी इसमें सम्मति ही नहीं वरन् पूर्ण सहयोग भी है । और नीतिविरुद्ध एवं बुरा कर्म करते समय आन्तरिक बाधा होने का आशय यह है कि भगवान का उसमें सहयोग नहीं है। वे उस कर्म के विरुद्ध हैं अतः हमें वह कर्म नहीं करना चाहिये । और यदि हम हठ पूर्वक वह काम कर भी डालते हैं तो बस यही पाप है जो कि ईश्वर की अनिच्छा से हो रहा है । पाप और पुण्य कर्म की साधारण परिभाषा यही होती है कि बुद्धि के अनुसार कर्म पुण्य है और प्रतिकूल कर्म पाप है। अब

हम इस निष्कर्ष तक पहुँच चुके कि बुद्धि-स्थित भगवान पुण्यकर्म करवाते हैं और पाप मनुष्य स्वयं करता है।

अब इसके पश्चात हमें यह भी जान लेना चाहिये कि ईश्वर की सत्ता या शक्ति किस प्रकार समान रूप से सभी में चेतनता का संचार करती है। इसके लिये दीपक का उदाहरण सबसे अधिक उपयुक्त जान पड़ता है वह इस प्रकार कि जैसे रात्रि में एक दीपक का प्रकाश हो रहा है उस प्रकाश में कई व्यक्ति उपस्थित हैं। उनमें दो चार तो रामायण आदि का पाठ या स्वाध्याय कर रहे हैं और अवशिष्ट व्यक्ति जुआ खेलने में संलग्न हैं। इतने में पुलिस आजाती है और जुआरियों को पकड़ लेती है। पुलिस के ऐसा करने पर यदि जुआरी लोग यह कहने लगे कि अरे भाई ? हमें क्यों पकड़ रहे हो ? हमने क्या अपराध किया ? न्यायानुसार तो तुम्हें दीपक को पकड़ना चाहिए। क्योंकि यदि वह प्रकाश ही न देता तो हम जुआ खेल ही कैसे सकते। जरा बुद्धि से विचारिये कि उनका यह ऐसा कहना कहाँ तक सत्य है ? निदान यही मालूम होगा कि उनका वैसा कहना बिल्कुल निस्सार है। वह इस प्रकार कि दीपक तो ईश्वर की भाँति समान रूप से बिना किसी भेद भाव के प्रकाश रूपी सत्ता या शक्ति दे रहा है। उसमें दो चार व्यक्ति बुद्धि के सत्परामर्श से रामायण का पाठ

कर रहे हैं और अवशिष्ट व्यक्ति बुद्धि के प्रतिकूल हठ पूर्वक जुआ खेलते हैं। क्योंकि वे सभी लोग यदि बुद्धि रूपी भगवान से परामर्श लें तो बुद्धि द्यूत कर्म के विरुद्ध में ही जायेगी। और बारम्बार उससे दूर रहने को प्रेरित करेगी किन्तु जब मनुष्य हठ पूर्वक उसकी बात न मानकर कोई कार्य कर बैठता है तो यही पाप कर्म कहा जाता है

ऊपर जो पाप कर्म बतलाया गया है उसका मूल कारण मन इन्द्रियां हैं। जब बुद्धि निर्बल पड़ जाती है तो मन और इन्द्रियां बलवान होकर बुद्धि के मना करने पर भी पाप करने पर टूट पड़ती हैं। मनुष्यों की कौन कहे, पशुओं को भी शुभ और अशुभ कर्म का ज्ञान होता है। जब हम बन्दर या कुत्ते को कोई चीज स्वयं खिलाते हैं तो वे भागते नहीं, वरन् प्रेम से खालेते हैं और इसके विपरीत जब वे चोरी से छिपकर कोई चीज उठाते हैं तो उस वस्तु को लेकर तुरन्त ही भाग जाते हैं। खड़े नहीं हो सकते, क्योंकि वे भी जानते हैं कि यह पाप कर्म है इसका हमें दण्ड मिलेगा। इसी प्रकार दूषित कर्म करते समय बुद्धि-स्थित भगवान बारम्बार कहते हैं कि यह निन्द्य कर्म है इसे मत करो, किन्तु फिर भी उसे हम कर डालते हैं यही पाप है।

पूर्व में बताया जा चुका है कि भगवान ने अपना एक रूप बद्धि भी बताई है। तो इससे यह सिद्ध हुआ

कि बुद्धि का परामर्श भगवान का परामर्श है। बुद्धि का कहना भगवान का कहना है। जब बुद्धि की आज्ञा मन इन्द्रियां नहीं मानती तो इसमें एक कारण है वह यह कि जब बुद्धि को उसका सत्संग रूपी भोजन नहीं मिलता तब वह निर्बल पड़ जाती है। भोजन के बिना निर्बल होजाना स्वाभाविक ही है। इसी बीच में मन इन्द्रियां बलवान होकर खूब पाप कर्म करती हैं। अतः पाप कर्म से बचने के लिए बुद्धि को बढ़ाने का उपाय करना चाहिए और वह उपाय "सत्संग सेवन"। इसी के द्वारा मनुष्य अक्षय सुख की प्राप्ति कर सकता है।

## मनुष्य को बरबश पाप में कौन लगाता है।

जब मनुष्य सत्संग भजन आदि शुभ साधन करता है, तब उसके अन्दर अनेक शुभ भावनायें या संकल्प बनने लगते हैं। जो अधिकाँश में इस प्रकार के होते हैं जैसे–आज से मैं सत्य बोलूंगा, छल कपट अन्याय से दूर रहूँगा, सभी को सुख देने का प्रयत्न करूंगा शरीर मन वाणी से किसी को दुःख न हो ऐसा प्रयास करूंगा, इत्यादि अनेक बातें उत्पन्न होने लगती हैं किन्तु वही मनुष्य जब साँसारिक व्यवहार में प्रवृत्त हो जाता है और यत्किंचित् भी मायिक कर्मों से सम्बन्ध होजाता है तो उन शुभ विचारों के स्थान पर पहिले थोड़े से कुसंकल्प उत्पन्न होते

हैं और धीरे २ वे शुभ भावनायें तो नष्ट हो जाती हैं और अशुभ भावनाओं का साम्राज्य हो जाता है। यह बात प्रायः देखने में आती है कि जो परम भक्त थे वे धीरे २ रजोगुणी और मायावादी बन गये। इसके साथ २ ऐसे भी अनेक उदाहरण मिलते हैं कि जो व्यक्ति पाप कर्म नहीं करना चाहते हैं उनको भी जबरदस्ती दूषित कर्म करना ही पड़ता है। ठीक यही समस्या अर्जुन के सामने थी। उन्होंने भगवान से यही प्रश्न किया कि:—

*अथकेन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।*
*अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥*

अर्थात हे वार्ष्णेय! पाप कर्म की इच्छा न होने पर भी मनुष्य को बरवश पाप कर्म में कौन लगा देता है वह कौन सी शक्ति है जिससे विवश होकर मनुष्य को दूषित कर्म करना ही पड़ता है।

अर्जुन के इस प्रकार प्रश्न करने पर भगवान कहते हैं कि—

*काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।*
*महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्॥*

अर्थात, हे अर्जुन? रजोगुण से उत्पन्न यह कामना ही क्रोध है। इस कामना की पूर्ति कभी भी नहीं होती।

जैसे अग्नि में जो कुछ भी डाला जाता है सभी भस्म होजाता है वह कभी तृप्त नहीं होती इसी प्रकार कामना की जितनी ही पूर्ति की जायगी उतना ही उसका विस्तार हो जायगा । अर्थात यदि एक कामना की पूर्ति आज हम कर लेते हैं तो कल चार कामनायें और बढ़ जायेंगी। एक बात और भी है वह यह कि कामना की पूर्ति होने पर से लोभ और पूर्ति न होने पर क्रोध की उत्पत्ति होती है । यही कामना मनुष्य को पाप कर्म करने के लिये आरम्भ कर देती है ।

कामना, क्रोध और लोभ की जन्मदात्री है । ये ही तीनों मिलकर मनुष्य को नरकगामी बना देते हैं। गीता में भगवान स्पष्ट कहते हैं कि:-

*त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।*
*कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥*

अर्थात काम क्रोध और लोभ ये ही तीन बातें मनुष्य को नरक लेजाने में कारण बनतीं हैं । अतः इनसे बचने का प्रयत्न करना चाहिए ।

किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है कि:-

काम क्रोध अरु लोभकी, होति न मन में खानि ।
तब हम होते देवता, क्यों बनते इन्सान ॥

तथा—काम क्रोध अरु लोभ की, जब लग मन में खानि।
तब लग पंडित मूर्खा, दोनों एक समान ॥

इतने कथन का साराँश यह निकला कि काम क्रोध और लोभ ही मनुष्य को बरबस पाप कर्म में लगाते हैं इन तीनों का कारण भगवान ने रजोगुण बताया है। काम रजोगुण का पुत्र है और क्रोध व लोभ, काम के पुत्र हैं अतः रजोगुण के नाश होने पर कामना, और कामना के नाश होने पर क्रोध व लोभ का नाश होना संभव है।

गीता में बताया गया है कि काम ही मनुष्य के ज्ञान, विवेक और सद्विचारों को नष्ट कर देता है। जैसे कि लिखा भी है—

धूमेनाव्रियते वन्हिर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेयदुष्पूरेणानलेन च ॥

अर्थात जैसे धुयें से अग्नि और मल से दर्पण ढक जाता है तथा जैसे जेर से गर्भ ढका हुआ है इसी प्रकार कामना के द्वारा सारा ज्ञान विज्ञान लोप सा हो जाता है यह अग्नि सदृश न पूर्ण होने वाली कामना ज्ञान को आच्छादित कर देती है।

जिस कामना का इतना प्रभाव है उसे अपनाकर पाप कर्म से बचना असंभव सा प्रतीत होता है। यदि ऐसा न होता तो भगवान् अर्जुन से इतने जोरदार शब्दों में यह न कहते कि:-

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥

अर्थात हे अर्जुन ! तुम पहिले, अपनी इन्द्रियों को वश में करके ज्ञान विज्ञान विनाशकारी पापी काम को ही मार डालो, इसी में कल्याण है।

इस कामना का विनाश कैसे करना चाहिए इसका भी विवेचन भगवान ने गीता में इस प्रकार किया है कि

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु पराबुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपम् दुरासदम् ॥

अर्थात हे अर्जुन ! इस शरीर से परे अर्थात बलवान व श्रेष्ठ इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों से परे मन है। मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे अर्थात सूक्ष्मातिसूक्ष्म सर्व श्रेष्ठ आत्मा है। अतः आत्मा को ही सर्वोपरि

जानकर बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके इस बली काम को नष्ट करदो ।

इस साधन के लिए दृढ़ अभ्यास की आवश्यकता है। अभ्यास करने पर जब मनुष्य की लौकिक अर्थात भोगों की कामनायें नष्ट हो जायेंगी तभी वह सांसारिक चिन्ताओं से बच सकता है और अपने परलोक के मार्ग को प्रशस्त कर सकता है ।

समाप्त

मानव जीवन को सफल बनाने वाली तथा अपार सुख शान्ति का सन्देश देने वाली पूज्यपाद श्री १०८ श्री स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज और श्री १०८ श्री स्वामी भजनानन्द जी महाराज रचित अनुपम पुस्तकें :—

| | | | |
|---|---|---|---|
| १—सदाचार दो भाग | | | ।) |
| २—दैवीजीवन सोपान | | | ।) |
| ३—ब्रह्मचर्य साधन | | | ।) |
| ४—भक्ति के नव साधन | | | ।) |
| ५—सुखद लोक यात्रा | | | ।=) |
| ६—साधन सुधा | | | ।-) |
| ७—नव महाव्रत | | | ।=) |
| ८—साधन प्रदीप | | | ।) |
| ९—हम दिग्विजयी कैसे हों | | | ।।।) |
| १०—आदर्श गृहस्थाश्रम | | | ।।।) |
| ११—परमार्थ पथ | | | ।।।=) |
| १२—परलोक की बातें | प्रथम सन्देश | | ।।) |
| १३—परलोक की बातें | द्वितीय सन्देश | | ।।) |
| ४१—परमार्थ मणि माला | प्रथम भाग | | ।≡) |
| १५—परमार्थ मणि माला | द्वितीय भाग | | ।) |
| १६—परमार्थ मणि माला | तृतीय भाग | | ।) |

प्रकाशन विभाग:—

मुमुक्षु-आश्रम, शाहजहाँपुर

*Printed by* :- THE PARMARTH PRINTING PRESS,
MUMUKSHU ASHRAM, SHAHJAHANPUR